श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
श्रीमहावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा (गांधी-नगर) पिन ३८२००९
8748

शोधादर्श

46

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

वैशाली (विहार) में श्री दिगम्बर जैन मन्दिर स्थित

भगवान महावीर की प्राचीन अतिशयकारी

२००० वर्ष प्राचीन गुप्तकालीन पाषाण प्रतिमा

{ वैशाली में बौना पोखर (तालाब) से प्राप्त }

आद्य सम्पादक : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक : श्री अजित प्रसाद जैन
सह - सम्पादक : श्री रमा कान्त जैन

प्रकाशक :
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ- २२६ ००४

णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं

शोधादर्श -४६

वीर निर्वाण संवत् २५२८ **मार्च २००२ ई.**

विषय क्रम

१.	गुरुगुण-कीर्तन : महावीरत्थुई	गणधर सुधर्मा स्वामी	१
२.	Impact of Ahimsa on Human Affairs	डॉ. ज्योति प्रसाद जैन	७
३.	सम्पादकीय : अहिंसा शिखर सम्मेलन- दीक्षा कल्याणक	श्री अजित प्रसाद जैन	१२
४.	सामयिक परिदृश्यः क्षणिकाएं	श्री रमाकान्त जैन	१३
५.	पंडित- कवि आशाधर	श्री रमाकान्त जैन	१४
६.	भगवान महावीर का जन्म स्थान	डॉ. ऋषभ चन्द्र जैन 'फौजदार'	१८
७.	चिन्तन कण : श्रमण एवं ब्राह्मण	डॉ. शशि कान्त	२४
८.	महावीर : कितने ज्ञात, कितने 'अज्ञात'	श्री जमनालाल जैन	२५
९.	महावीर जन्माष्टक	डॉ. महेन्द्र सागर प्रचण्डिया	२७
१०.	तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है	डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'	२८
११.	जैन धर्म का मूल तत्व 'अहिंसा'	डॉ. आर. टी. सांवलिया	२९
१२.	शुद्धाम्नाय : स्वरूप और उत्पत्ति	डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल	३३
१३.	जैन धर्म	श्री कैलाश भूषण जिन्दल	३८
१४.	The Archaeology of Faith-Lord Rishabhdeo	श्री अजित प्रसाद जैन	४१
१५.	अर्जुन माली (नाटिका)	श्रीमती सुधा जिन्दल	४३
१६.	समाधान मांगते प्रश्न :		

प्रश्न श्री जमनालाल जैन के
समाधान जस्टिस एम. एल. जैन द्वारा ४८
समाधान श्री आदित्य जैन द्वारा ५३
१७. जन्म जयन्ती इतिहास- मनीषी की श्री अंशु जैन 'अमर' ५५
१८. समाचार विविधा ५६
१९. समाचार विमर्श : श्री अजित प्रसाद जैन ५८
१०० करोड़ का आवंटन
विद्वत् परिषद द्वय के चुनाव
और अब तीसरी विद्वत् परिषद भी
भगवान महावीर की जन्म भूमि कुण्डलपुर : शास्त्रि परिषद का प्रस्ताव
मुनि श्री को राजकीय अतिथि का दर्जा
२०. ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिक्के श्री रमाकान्त जैन ६३
२१. साहित्य सत्कार : ६५
मुमुक्षु समीक्षा; त्यौहार समीक्षा; पंचकल्याणक गजरथ
समीक्षा; चातुर्मास समीक्षा; सिन्धु-सरस्वती सभ्यता एवं
आर्यों का प्रश्न; जैन इतिहास; जैनाचार विज्ञान; दैनिक
जिन पूजन संग्रह; क्षत्र-चूड़ामणि; बोधिसत्व (नाटक);
अनेकान्त भवन ग्रन्थ रत्नावलि-३; समीचीन सार्वधर्म सोपान;
चम्बल घाटी का श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र
सिंहोनिया। - श्री अजित प्रसाद जैन
श्री सुहेलबावनी; द्विजदीन काव्य मंजूषा;
समयसार; जयणा मंगलम्; पराया माल अपना;
यह जीवन कठिन कहानी है; सर्जना (ग़ज़ल-संग्रह);
मिलन से महाप्रयाण तक (स्मृति ग्रंथ); श्री मांगीतुंगी जी
दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र परिचय व पूजा; वर्द्धमान कैसे बने
महावीर; भगवान महावीर और प्रजातन्त्र; संस्कृति का - श्री रमा कान्त जैन
आदि स्रोत जैन धर्म।
Apta- Mimansa of Acharya Samantabhadra - डॉ. शशि कान्त
२२. अभिनन्दन ७७
२३. आभार ७९
२४. शोक संवेदन ७९
२५. शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में ८१

❑ ❑ ❑

गुरुगुण कीर्तन -

महावीरत्थुई (वीरत्थुइ)

- सुधर्मा स्वामी

(अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के समापन के सुअवसर पर सर्वाधिक प्राचीन उपलब्ध महावीर स्तवन (गुणगान) या वीर स्तुति को देकर हम अपनी विनयांजलि अर्पित कर रहे हैं। श्वेताम्बर आम्नाय में संरक्षित अंग सुत्त के द्वितीय अंग **सूय गडाङ्ग सूत्र** के छठे अध्ययन में समाहित तथा अर्द्ध मागधी प्राकृत में निवद्ध यह महावीरत्थवो या वीरत्थुइ (महावीर स्तवन या वीर स्तुति) वीर शासन के प्रथम पट्टाचार्य गणधर सुधर्मा स्वामी (छठी शती ई.पू.) द्वारा रची कही जाती है।

इस अध्ययन की प्रथम दो गाथाओं में वताया गया है कि जम्वू स्वामी प्रभृति शिष्यों तथा अन्य तीर्थंकों, श्रमणों, मुमुक्षुओं आदि द्वारा यह जिज्ञासा किए जाने पर कि 'हे मुनि पुंगव! एकान्त हितरूप अनुपम धर्म के सम्प्ररूपक नात्त पुत्त भगवान कौन थे, उनका ज्ञान, दर्शन, शील (यम नियम का आचरण) कैसा था, आपने तो उन्हें प्रत्यक्ष देखा जाना है, हमें उनके विषय में वताइए, श्री सुधर्मा स्वामी ने भगवान महावीर का निम्न प्रकार स्तवन (गुणगान) किया - **सम्पादक**)

'खेयण्णए से कुसले मेहावी' अणंतणाणी य अणंतदंसी।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स जाणाहि धम्मं च धिइं च पेह ।।३।।

'उड्ढंयं' अहे तिरियं दिसासु तसा य जे थावर जे य पाणा।
'से णिच्चणिच्चेहि' समिक्ख पण्णे 'दीवे व धम्मं समियं उदाहु' ।।४।।
से सव्वदंसी अभिभूयणाणी णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विंज्जं 'गंथा अतीते' अभए अणाऊ।।५।।

से भूइपण्णे अणिएयचारी ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू।
अणुत्तरं तवति सूरिए वा वइरोयणिंदे व 'तमं पगासे'।।६।।

अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं णेता मुणी कासवे आसुपण्णे।
इंदे व देवाण महाणुभावे सहस्सणेता 'दिवि णं' विसिट्ठे।।७।।

से पण्णया अक्खयसागरे वा महोदही वा वि अणतपारे।
अणाइले या अकसाइ मुक्के सक्के व देवाहिवई जुईमं।।८।।

से वीरिएणं पडिपुण्णवीरिए सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे।
सुरालए 'वा वि' मुदागरे से विरायएणेगगुणोववेए ।।९।।

सयं सहस्साण उ जोयणाणं तिकंडगे पंडगवेजयंते।
से जोयणे णवणउत्तिं र ुस्से उद्धस्सिऐ हेट्ठ सहस्समेगं ।।१०।।

पुट्ठे णभे चिट्ठइ भुमिवट्ट ठिए जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति।
से हेमवण्णे बहुणंदणे य जंसीं रइं वेययईती महिंदा ।।११।।

से पव्वए सद्दमहप्पगासे विरायती कंचणमट्ठवण्णे।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे गिरीवरे से जलिए व भोमे ।।१२।।

महीए मज्झम्मि ठिए णगिंदे पण्णायते सूरियसुद्धलेसे।
एवं सिरीए उ स भूरिवण्णे मणोरमे 'जोयति अच्चिमाली' ।।१३।।

सुदंसणस्सेस जसो गिरिस्स पवुच्चती महतो पव्वतस्स।
एतोवमे समणे णंतपुत्ते जाती-जसो-दंसण-णण सीले ।।१४।।

विविध उपमाओं से भगवान की श्रेष्ठता -

गिरीवरे वा णसढायताणं रुयगे व सेट्ठे वलयायताणं।
ततोवमे से जगभूतिपण्णे मुणीण 'मज्झे तमुदाहु' पण्णो ।।१५।।
अणुत्तरं धम्ममुदीरइत्ता अणुत्तरं झाणवरं झियाइ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं संखेंदुवेगंतवदातसुक्कं ।।१६।।
अणुत्तरग्गं परमं महेसी 'असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गतिं साइमणंत पत्ते णणेण सीलेण य दंसणेण' ।।१७।।
'रुक्खेसु णाते जह सामली वा' जंसी रतिं वेययंती सुवण्णा।
वणेसु या णंदणमाहु सेट्ठं णणेण सीलेण य भूतिपण्णे ।।१८।।
थणितं व सद्दाण अणुत्तरं चंदे व ताराण महाणुभावे।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं एवं मुणीणं अपडिण्णमाहु ।।१९।।
जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे णागेसु वा 'धरणिंदमाहु सेट्टं'।
खोओदए 'वा रस वेजयंते' तहोवहाणे मुणि वेजयंते ।।२०।।

हत्थीसु एरावणमाहु णते सीहो मिगणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु या गरुले वेणुदेवे णिव्वाणवादीणिह णायपुत्ते ।।२१।।

जोहेसु णाए जह वीससेणे पुप्फेसु वा 'जह अरविंदमाहु'।
खत्तीण सेट्ठे जह दंतवक्के इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे ।।२२।।

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं सच्चेसु या अणवज्जं वयंति।
तवेसु या उत्तम बंभचेरं लोगुत्तमे समणे णयपुत्ते।।२३।।

ठितीण सेट्ठा लवसत्तमा वा सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
णिव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी।।२४।।

भगवान महावीर की विशिष्ट उपलब्धियां -

पुढोवमे धुणती विगयगेही सणिण्हिं कुव्वणिइ आसुपण्णे।
तरिउं सुमद्दं व महाभवोघं अभयंकरे वीर अणंतचक्खू।।२५।।

कोहं च माणं च तहेव मायं लोभं चउत्थं अज्झत्तदोसा।
एताणि चत्त अरहा महेसी ण कुव्वई पावं ण कारवेइ।।२६।।

किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणे।
से सव्ववायं इह वेयइत्ता उवट्ठिए सम्म दीहरायं।।२७।।

से वारिया इत्थि सराइभत्तं उवहाणवं दुक्खखयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता 'अयरं परं' च सव्वं पभू वारिय सव्वारी ।।२८।।

सोच्चा य धम्मं अरहंतभासियं समाहियं अट्ठपदोवसुद्धं।
तं सद्दहंता डाय जणा अणाऊ 'इंदा व' देवाहिव आगमिस्संति।।२९।।

भावार्थ -

- भगवान महावीर खेदज्ञ (संसार के प्राणियों के दुःख के ज्ञाता) थे, कर्मों के उच्छेदन में कुशल थे, आशुप्रज्ञ (सदासर्वत्र उपयोगवान) थे, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे। वे उत्कृष्ट यशस्वी थे, जगत के नयनपथ में स्थित थे, उनके धर्म को तुम जानो (समझो) और (धर्मपालन में) उनकी धीरता को देखो। ।३।

- ऊर्ध्व, अधो और तिर्यक् दिशाओं में, जो त्रस और स्थावर, प्राणी (रहते) हैं, उन्हें नित्य (जीव द्रव्य की दृष्टि से) और अनित्य (पर्याय-परिवर्तन की दृष्टि से) दोनों प्रकार का जानकर उन (केवलज्ञानी भगवान) ने सद्धर्म का सम्यक् कथन किया था। ।४।

- वे (वीरप्रभु) सर्वदर्शी थे, केवलज्ञान सम्पन्न थे, निरामगन्धी (मूल- उत्तरगुणों से विशुद्ध चारित्र पालक) थे, (परीषहोपसर्गों के समय निष्कम्प रहने के कारण) धृतिमान थे, स्थितात्मा थे (आत्मस्वरूप में उनकी आत्मा स्थित थी), समस्त जगत में वे (सकल पदार्थों के वेत्ता होने से) सर्वोत्तम विद्वान् थे। (सचित्तादि रूप बाह्य और कर्मरूप आभ्यन्तर (ग्रन्थ से) रहित थे, अभय (सात प्रकार के भयों से रहित) थे तथा अनायु (चारों गतियों के आयुष्यबन्ध से रहित) थे। ।५।

- वे भूतिप्रज्ञ (अतिशय प्रबुद्ध), अनियताचारी (अप्रतिबद्धविहारी), संसार-सागर को पार करने वाले, धीर तथा अनन्तचक्षु (अनन्तज्ञेय पदार्थों को केवल ज्ञानरूप नेत्र से जानते) थे। ज्ञानभानु से सर्वाधिक देदीप्यमान थे तथा अज्ञानान्धकार मिटाकर पदार्थों का यथार्थ स्वरूप प्रकाशित करते थे। ।६।

- आशुप्रज्ञ, काश्यप गोत्रीय, मुनिश्री वर्धमान स्वामी इस अनुत्तर (सबसे प्रधान) धर्म के नेता हैं। जैसे स्वर्ग लोक में इन्द्र हजारों देवों में महाप्रभावशाली, नेता एवं विशिष्ट हैं, इसी तरह भगवान भी सबसे अधिक प्रभावशाली, सबके नेता और सबसे विशिष्ट हैं। ।७।

- वह (भगवान) समुद्र के समान प्रज्ञा से अक्षय हैं, उनकी प्रज्ञा अपरम्पार है। जैसे समुद्र जल निर्मल (कलुषतारहित) है, वैसे ही भगवान का ज्ञान भी (ज्ञानावरणीय कर्ममल से सर्वथा रहित होने से) निर्मल है, तथा वह कषायों से सर्वथा रहित एवं घाति कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त है। (इस तरह) भगवान इन्द्र के समान देवाधिपति हैं तथा द्युतिमान (तेजवी) हैं। ।८।

- वह (भगवान महावीर) परिपूर्ण वीर्य हैं, पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ सुदर्शन पर्वत के समान, वीर्य से तथा अन्य गुणों से सर्वश्रेष्ठ हैं। जैसे स्वर्ग वहां के निवासियों को अनेक (प्रशस्त रूप-रस-गन्ध स्पर्श प्रभावादि) गुणों से युक्त होने से मोदजनक है, वैसे ही अनेक गुणों से युक्त भगवान भी (पास में आने वाले के लिए) प्रमोदजनक होकर विराजमान हैं। ।९।

- वह सुमेरु पर्वत एक लाख योजन ऊंचा है। उसके तीन खण्ड (विभाग) हैं। उस पर सर्वोच्च पाण्डुकवन पताका की तरह सुशोभित है। वह निन्यानवे हजार योजन ऊंचा उठा है और एक हजार योजन नीचे (भूमि में) गड़ा है। ।१०।

- वह सुमेरु पर्वत आकाश को छूता हुआ पृथ्वी पर स्थित है। जिसकी सूर्यगण परिक्रमा करते हैं। वह सुनहरे रंग का है और,अनेक नन्दनवनों से युक्त है। उस पर महेन्द्रगण आनन्द अनुभव करते हैं। ।११।

- वह पर्वत (सुमेरु, मन्दर, मेरु, सुदर्शन, सुरगिरि आदि) अनेक नामों से महाप्रसिद्ध है, तथा सोने की तरह चिकने शुद्ध वर्ण से सुशोभित है। वह मेखला आदि या उपपर्वतों के कारण सभी पर्वतों में दुर्गम है। वह गिरिवर मणियों और औषधियों से प्रकाशित भूप्रदेश की तरह प्रकाशित रहता है। ।१२।

- वह पर्वतराज पृथ्वी के मध्य में स्थित है तथा सूर्य के समान शुद्ध तेज वाला प्रतीत होता है। इसी तरह वह अपनी शोभा से अनेक वर्ण वाला और मनोरम है तथा सूर्य की तरह (अपने तेज से दसों दिशाओं को) प्रकाशित करता है। ।१३।

- महान पर्वत सुदर्शनगिरि का यश (पूर्वोक्त प्रकार से) बताया जाता है। नात्तपुत्त श्रमण भगवान महावीर की भी इसी पर्वत से उपमा दी जाती है। (जैसे सुमेरुपर्वत अपने गुणों के कारण समस्त पर्वतों में श्रेष्ठ है, इसी तरह) भगवान भी जाति, यश, दर्शन, ज्ञान और शील में सर्वश्रेष्ठ हैं। ।१४।

- जैसे लम्बे पर्वतों में निषधपर्वत श्रेष्ठ है तथा वलयाकार (चूड़ी के आकार के) पर्वतों में रूचक पर्वत श्रेष्ठ है, वही उपमा जगत में सबसे अधिक प्रज्ञावान भगवान महावीर की है। प्राज्ञ-पुरुषों ने मुनियों में श्रमण महावीर को श्रेष्ठ कहा है। ।१५।

- भगवान महावीर ने अनुत्तर (संसारतारक सर्वोत्तम) धर्म का उपदेश देकर सर्वोत्तम श्रेष्ठ ध्यान-शुक्लध्यान की साधना की। (भगवान का) वह ध्यान अत्यन्त शुक्ल वस्तुओं के समान शुक्ल था, दोषरहित शुक्ल था, शंख और चन्द्रमा (आदि शुद्ध श्वेत) पदार्थों के समान एकान्त शुद्ध श्वेत (शुक्ल) था। ।१६।

- महर्षि महावीर ने (विशिष्ट क्षायिक) ज्ञान, शील (चारित्र) और दर्शन (के बल) से समस्त (ज्ञानावरणीय आदि) कर्मों का बिशोधन (सर्वथा क्षय) करके सर्वोत्तम सादि अनन्त परम सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त की। ।१७।

- जैसे वृक्षों में शाल्मली (सेमर) वृक्ष (जगत-प्रसिद्ध) है, जहां (भवनपतिजाति के) सुपर्ण (कुमार) देव आनन्द का अनुभव करते हैं, अथवा जैसे वनों में नन्दनवन को श्रेष्ठ कहते हैं, उसी तरह ज्ञान और चारित्र में प्रभूतज्ञानी भगवान महावीर को सबमें प्रधान (सर्वश्रेष्ठ) कहते हैं। ।१८।

- शब्दों में जैसे मेघ गर्जन प्रधान है, तारों में जैसे महाप्रभावशाली चन्द्रमा श्रेष्ठ है, तथा सुगन्धों में जैसे चन्दन को श्रेष्ठ कहा है, इसी प्रकार मुनियों में कामना रहित भगवान महावीर को श्रेष्ठ कहा है। ।१९।

- जैसे समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र श्रेष्ठ है, नागों (नागकुमार देवों) में धरणेन्द्र को श्रेष्ठ कहा है एवं इक्षुरसोदक समुद्र जैसे रस वाले समस्त समुद्रों की पताका के समान प्रधान है, उसी तरह विशिष्ट तपोविशेष के कारण मुनिवर भगवान महावीर समग्रलोक की पताका के समान मुनियों में सर्वोपरि हैं। ।२०।

- हाथियों में ऐरावत हाथी को प्रधान कहते हैं, मृगों में सिंह प्रधान है, नदियों में गंगा नदी प्रधान है, पक्षियों में गरुड़ पक्षी मुख्य है, इसी प्रकार मोक्षमार्ग नेताओं में णाय पुत्त भगवान (महावीर) प्रमुख थे। ।२१।

- जैसे योद्धाओं में प्रसिद्ध विश्वसेन (चक्रवर्ती) या विष्वक्सेन (वासुदेव श्री कृष्ण) श्रेष्ठ हैं, फूलों में जैसे कमल को श्रेष्ठ कहते हैं और क्षत्रियों में जैसे दान्तवाक्य (चक्रवर्ती) या दन्तवक्त्र (दन्तवक्र राजा) श्रेष्ठ है, वैसे ही ऋषियों में वर्धमान महावीर श्रेष्ठ हैं। ।२२।

- जैसे दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य वचनों में निष्पाप (जो पर पीड़ा उत्पादक न हो) सत्य (वचन) को श्रेष्ठ कहते हैं, तपो में ब्रह्मचर्य उत्तम तप है, इसी प्रकार लोक में उत्तम श्रमण णाय पुत्त (महावीर) हैं। ।२३।

- जैसे समस्त स्थिति (आयु) वालों में पंच अनुत्तर विमानवासीदेव श्रेष्ठ हैं, जैसे सुधर्मा सभा समस्त सभाओं में श्रेष्ठ है, तथा सब धर्मों में जैसे निर्वाण (मोक्ष) श्रेष्ठ धर्म है, इसी तरह णायपुत्त (महावीर) से बढ़कर (श्रेष्ठ) कोई ज्ञानी नहीं है। ।२४।

- भगवान महावीर पृथ्वी के समान (समस्त प्राणियों के लिए आधारभूत) हैं, वे कर्ममलों को दूर करने वाले हैं। वे बाह्य और आभ्यन्तर पदार्थों में आसक्ति से रहित हैं। वे आशुप्रज्ञ पदार्थों का संग्रह नहीं करते हैं। अथवा वे क्रोधादि विकारों की निकटता-लगाव नहीं करते। (चातुर्गतिक) महान संसार समुद्र को पार करके भगवान निर्वाण के निकट पहुंचे हैं। वे अभयंकर (दूसरों को भय न देने वाले, न ही स्वयं भय पाने वाले) हैं। वीर (कर्म-विदारण करने के कारण) हैं और अनन्त चक्षु (ज्ञानी) हैं। ।२५।

- महर्षि महावीर क्रोध, मान, माया तथा लोभ इन चार दोषों का परित्याग करके अर्हन्त (पूज्य), विश्ववंद्य, तीर्थंकर बने हैं। वे न स्वयं पापाचरण करते हैं और न दूसरों से कराते हैं। ।२६।

- भगवान महावीर क्रियावाद, अक्रियावाद, वैनयिकों के वाद और (अज्ञानियों के) अज्ञानवाद के पक्ष को सम्यक् रूप से जानकर तथा समस्त वादों (के मन्तव्य) को समझ कर आजीवन संयम में उत्थित (उद्यत) रहे। ।२६।

- वीर प्रभु रात्रि भोजन सहित स्त्रीसंसर्ग का त्याग कर दुःखों के (कारण भूत कर्मों के) क्षय के लिए विशिष्ट तप में उद्यत रहते थे। उन्होंने इहलोक और परलोक को जानकर सब प्रकार के पापों का सर्वथा त्याग कर दिया था। ।२८।

- श्री अरहन्त देव द्वारा भाषित, सम्यक् रूप से अर्थ एवं पदों से शुद्ध (निर्दोष) धर्म को सुनकर उस पर श्रद्धा करने वाले व्यक्ति आयुष्य (कर्म) से रहित- मुक्त हो जाएंगे अथवा इन्द्रों की तरह देवों का आधिपत्य प्राप्त करेंगे, यह मैं कहता हूं ।२९।

- अनुवादक

श्रीचन्द सुराणा 'सरस'

IMPACT OF AHIMSA ON HUMAN AFFAIRS

- Dr. JYOTI PRASAD JAIN

Ahimsa is not only a metaphysical doctrine, a philosophical postulate, or an ethical dogma, it is the primary principle of the high life, the very essence of human conduct. It is, moreover, a mental attitude, a definite outlook towards life, and an ever guiding factor in one's relations and dealings with other human beings, nay, all living beings. It is not merely physical non-violence, but it upholds sanctity of life and implies a whole- some respect for life in whatever form.

In its negative aspect, Ahimsa means abstinence from inflicting mental or physical pain, or from hurting, injuring or severing the life-forces of any living being, human or subhuman, by thought, word or deed, by one self, through the agency of somebody else, or even by approving of such a violent act committed by others. In short, it is an abstinence from such violence as is deliberate, wilful or wanton and is caused due to rashness or negligence, or for some selfish motive, gain, enjoyment, amusement or sport, or on account of envy, jealousy, hatred or enmity. In its positive aspect, Ahimsa denotes humaneness, humanitarianism, kindness, tenderness, mercy, sympathy and love, the spirit of co-existence, i.e., live and help others to live. An Ahimsite person is full of compassion and understanding for others and is ever ready to help and serve the needy and the suffering, at the cost of his own personal comfort, convenience or gain. He tends to be broadminded, benevolent, generous and just. He who grasps the import of Ahimsa in its dual aspect, fashions his thoughts, words and actions acordingly. He is a friend to all in his thinking, speech, behaviour and conduct.

There are, however, limitations to the extent to which a person placed in a particular situation can practise Ahimsa. An ordinary man of the world, as most of us are, can certainly aspire to achieve the ideal some day, but in his present circumstances he has to do many things which are not technically or literally Ahimsite. He has to pursue, for a living, agriculture, industry, trade and other productive or economic activities. He has a perfect right

to enjoy and consume the fruits of his labour, but has also to abide by the laws of the State and the society he belongs to. And, he has to protect and defend mainly his country, society, religion and culture, family, person and property from attackers and law-breakers, from not only his own personal enemies but also from those of the society and the country. All such activities involve violence, but a sane, judicious and brave person will see to it that the unavoidable minimum of violence is exercised. He suppresses crime, punishes the wrongdoer, subdues or drives out the enemy, but is never cruel, revengeful or vindictive, rather, he tends to be considerate and forgiving, once the evil is undone.

This Ahimsite way of thinking and living was cultivated and inculcated into the minds of the people by our sages, ancient, mediaeval and modern, right from Bhagawan Rishabha, the First Tirthamkara, down to Mahatma Gandhi. Himsa and Ahimsa have always coexisted in man's world, but in India Ahimsa generally seems to have had an upperhand. Its far-reaching influence is not far to seek. The adherents of the Shramanic creeds have always been Ahimsite by conviction, but not so were the non- Shramanic peoples. In due course, however, they, too, came to imbibe the spirit of Ahimsa. The result was that bloody sacrifices in the name of religion went out of use, slavery was abolished, vegetarianism gained ground, amity and cooperation and a tolerant regard for the beliefs and ideas of others developed. Peaceful coexistence came to be upheld as the basis of society. There is no doubt that Ahimsa has to a considerable extent acted as a great spiritual as well as moral force in human affairs in the Indian society, and, perhaps, in all really civilized societies.

The political life of the country, too, could not have remained quite untouched by the spirit of Ahimsa or the general Ahimsite attitude explained above. Politics, the art and science of government, has for its basis the State, the body politic or the organisation thereof, which includes the executive, legislative and judicial wings, the civil and military authorities, the rulers, statesmen, ministers, administrators, the army and the entire governmental machinery, and inter-state relations. As such, the political aspect is, perhaps, the most effective and all-pervasive aspect of the life of a people or a nation. In fact, the history of a

country is in the main its political history. And, since the political life of a people can never be absolutely cut off or separated from its general tenor, there is ample evidence to show that Ahimsa generally acted as political force as well in Indian history, particularly prior to the advent of the Muslims on the Indian political scene, about the beginning of the 13th century A. D.. There were, no doubt, exceptions, but they only proved the rule.

As laid down by ancient politicists like Somadeva Suri, the existence of the State depended on succession and prowess. But even in ancient India, successions to the throne were not always regular, smooth and peaceful. Dynastic changes and palace revolutions were not unknown, in which self-aggrandisement and treachery, too, played their part, often involving much unnecessary bloodshed. Sometimes an autocratic ruler tended to become tyrannical and administrators and government servants to become corrupt, rapacious and unscrupulous, resulting in violent exploitation and misery of the common people. If allowed to have its own way, politics many a time tends to transform itself into power politics, in internal matters as well as in inter-state relations, and, power politics necessarily implies violence, injustice and unscrupulousness. In it, means count for little, the end is everything.

In spite of the fact that all the features mentioned above were to an extent in evidence in the political history of ancient India, they were much less common, much less frequent, much less wanton and bloody than we find in the histories of other countries and in that of mediaeval India under Muslim rule. This was certainly due to the influence of the Ahimsite attitude inherent in the people of India of those times. Political oppressions and persecutions were also rare, and the rulers except in a few cases did not resort to violent religious or social persecutions. Punishment were somewhat severe, when judged by modern standards, but crime was also rare and cases of clemency, mercy, pardon or commutation of sentences were often met with.

The more prominent consequence 'of power politics is war. Ambitious rulers, with expansionist or imperialistic designs, often for reasons of pride, greed or covetousness, led campaigns of conquest, and subdued, annexed or destroyed weaker state.

But in wars, too, a definite moral code was followed in this country. There was no fighting after night-fall, care was taken not to harm cultivation and the rural population, women, children and the old were generally spared, places of worship, art and learning were not molested, and the fallen enemy was often pardoned or made friends with. If loot and plunder were indulged in, it was usually in the capital and palaces of the defeated chief. Mostly, the issue was decided by a duel fought out between the leaders of the opposite parties, while the armies on both the sides stood back as silent spectators. Perhaps, it was the impact of the example set by Bharata, the first paramount sovereign of Bharatavarsha, and his brother, Bahubali, who were engaged in the first war in Indian history and had decided the issue by a single- handed fight between themselves, without involving the armies in it. The Rama-Ravana war also appears to have been a series of similar duels between Rama and Lakshmana on one side and Ravana and his brothers and sons on the other. Similarly, the so-called Mahabharata War (the Great War) between the five Pandava brothers and the Kauravas seems to have been a series of single-handed fights between the former and the generals of the latter who took the field one after the other.

In later times, this Ahimsite character of Indian wars certainly deteriorated. But, then the Indians had to engage in defensive encounters against foreigners like the Nagas, Persians, Greeks, Parthians, Sakas, Kushanas, Hunas, Arabs and Turks, and later the Europeans, who were mostly fierce, ruthless, savage, rapacious and unscrupulous peoples and invaded India, one after the other, in order to loot and plunder the wealth of and rule over this highly cultured, rich and coveted sub-continent. In order to thwart their nefarious attempts the Indian had to match their valour, strength and skill with those of the aggressors. Even then, in their own wars, the Indians generally followed their old moral code and practice. But, whenever they tried to do so as against the foreigners, they had mostly to suffer. Even in mediaeval times, the few kings like Akbar the Mughal, who adopted a policy of comparative leniency, moderation, tolerance and consideration, succeeded in making their empires very vast, powerful, rich, prosperous and lasting. The British, too, had to

follow in the footsteps in order to establish stable control over this country. And, again, it was Ahimsa in the hands of Mahatma Gandhi who, using it as an effective political weapon in his non-cooperation, civil disobedience, boycott, Satyagraha and quit-India movements, roused the entire country and finally succeeded in achieving independence for the country.

We have witnessed two great world wars in the present century and the untold misery and destruction of life and property which they brought in their wake. The menace of war is not yet over, although thinkers all over the world are realising that war is no solution to the problems of mankind, and that war can never end war.

Some say that the habit of killing and making life intolerable is an inevitable element in human nature, or that 'Man is a beast of prey', as Spengler would put it. But wars are inevitable only as long as we regard power politics as natural. No sane person has or would ever advocate war. The reputed soldier, Duke of Wellington, remarked, "Take my word for it, if you had seen but one day of war you would pray to Almighty God that you might never again see an hour of war". And St. AugusTine has it, " What one condemns in war is the desire to harm, implacable hate, the fury of reprisals, the passion for domination". In fact, as Dr. S. Radhakrishnan observed, "Civilised nations are slowly beginning to recognize war as an obsolete method of obtaining decisions. The slaughter involved in modern warfare is so much out of proportion to the ends that the arguments and sentiments which have been used in the past to justify wars are no more tenable". This may be said to be a victory of Ahimsa in human affairs, even in the political field.

In short, the only hope for the existence, welfare and salvation of mankind lies in a recognition of Ahimsa as a potent and active force in the world of man, in his political, economic, social, cultural and religious spheres of activity. There is no dearth of evidence in the pages of Indian history, too, to prove that Ahimsa has often played its role as an effective political force, no doubt, in varying degrees.

- Late Renowned Scholar of Jainolgy

सम्पादकीय

अहिंसा शिखर सम्मेलन–दीक्षा कल्याणक

दि. ६ दिसम्बर, २००१ को सीरीफोर्ट आडीटोरियम, नई दिल्ली में राष्ट्र संत आचार्य श्री विद्यानन्द जी व आचार्य सम्राट डॉ. शिवमुनि जी सहित कई प्रमुख आचार्यों व साधुओं के पावन सान्निध्य में अहिंसा शिखर सम्मेलन भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। इसका आयोजन भारतीय जैन मिलन के द्वारा किया गया था। सम्मेलन के चेयरमैन श्री राजेन्द्र जैन ने बताया कि इस आयोजन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक एकता को बढ़ावा देना है, आचार्य विद्यानन्द जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि विश्व के सभी धर्मों/दर्शनों का सार अहिंसा है, प्रत्येक आत्मा में समता है और जहां समता है, वहां अहिंसा है, यह सृष्टि अहिंसा के बल पर ही चल रही है; प्राणीमात्र अहिंसा का पालन किसी न किसी प्रकार अवश्य करता है, और यह अहिंसा की भावना उसे **परस्परोपग्रहो जीवानां** के मंगलमय मंत्र के अनुरूप बनाए रखती है।

यह ध्यान देने योग्य है कि ६ दिसम्बर, २००१ भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव के ऐतिहासिक वर्ष में पड़ने वाले दीक्षा कल्याणक का पावन जयंती दिवस था और देश की राजधानी में आयोजित किया गया यह अहिंसा सम्मेलन उसका प्रमुख समारोह था। इसके आयोजन पर लगभग तीन लाख रुपये का व्यय हुआ। इसके अतिरिक्त देश भर में उत्सव प्रिय जैन समाज ने छोटे-बड़े पूजा विधान, शांति विधान, अहिंसा संगोष्ठियां आदि सम्पन्न कर इस पावन दिवस को धर्मोल्लास पूर्वक मनाया। पर क्या इस सबसे ही हमारा उन भगवान का दीक्षा कल्याणक मनाना सार्थक हो गया ?

भगवान का दीक्षा कल्याणक संसार की नश्वरता का, भोगोपभोगों की असारता का, वैराग्य का संदेश देता है वह हमें उन महापुरुष की १२ वर्षीय कठोर तप-संयम साधना की स्मृति दिलाता है जिसकी परिणति उनके केवलज्ञान प्राप्ति में परिलक्षित हुई और वे पूर्ण वीतराग, सर्वज्ञ, कृतकृत्य, अर्हन्त परमेष्ठी हो गए, बहिरात्मा से परमात्मा बन गए।

भगवान का दीक्षा कल्याणक दिवस भव्यात्माओं को मोक्ष मार्ग पर चलने का आह्वान करता है तथा जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर संसार भ्रमण अल्प करने का

पुरुषार्थ करने की प्रेरणा देता है। किन्तु संसार भ्रमण अल्प करने के प्रयोजन से उन भगवान की तप-संयम साधना का अनुकरण करने के उदात्त उद्देश्य से जैनेश्वरी दीक्षा अंगीकार कर अपने को आचार्य-उपाध्याय-साधु परमेष्ठी के परम पूज्य पदों पर आसीन मानने वाले हमारे वर्तमान के अनेक साधु-संतों को देखकर ऐसा लगता है जैसे उन्होंने अधिकाधिक यश-ख्याति, स्व प्रचार प्रदर्शन ही नहीं, प्रच्छन्न-अप्रच्छन्न रूप से विपुल अर्थ अर्जन करना भी, अपने साधु जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया है। काश हमारे ऐसे साधु-संतों ने भगवान महावीर की इस ऐतिहासिक दीक्षा कल्याणक जयंती के पुनीत अवसर पर थोड़ा आत्मालोचन भी किया होता कि क्या उन भगवान ने इन्हीं सब भौतिक उपलब्धियों के लिए कठोर साधना की थी? काश उन्होंने महसूस किया होता कि उनकी ऐसी प्रवृत्तियां वस्तुतः मोक्ष मार्ग की साधक नहीं, उलटे बाधक हैं और आत्मालोचन से अपनी प्रवृत्तियों का परिमार्जन किया होता तो अवश्य ही हमारा भगवान का दीक्षा कल्याणक मनाना सार्थक होता।

यदि निर्दोषचर्यारत हमारे कतिपय वरिष्ठ आचार्यों/मुनियों ने भी श्रमणाचार में आई विकृतियों से साधु संघों को मुक्त करने के लिए कुछ प्रभावी कदम उठाने का संकल्प लिया होता तो हमारा यह दीक्षा कल्याणक दिवस मनाना निश्चय ही सार्थक होता।

- अजित प्रसाद जैन
प्रधान सम्पादक
पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ- २२६००४

सामयिक परिदृश्य -

क्षणिकाएं

शिखर सम्मेलन अहिंसा का हम मना रहे, हिंसा को शिखर पर हम ले जा रहे।
प्याज-लहसुन से करते रहे परहेज जो, खुलेआम श्वेत आलू हैं अब खा रहे।।१।।

विवेक इतना जाग्रत है हमारा, आत्मप्रचार खूब हम कर रहे।
संसार-सागर में भक्तगण हमारे, पैन-चित्रों से नैया तर रहे।।२।।

भीड़ जुटानी हो यदि आपको, फ्री में दावत दे दीजिये।
जो आते नहीं मंदिर कभी, दर्शन उनके आप कर लीजिये।।३।।

- रमाकान्त जैन

पंडित - कवि आशाधर

- श्री रमाकान्त जैन

व्याघ्रेरवालवरवंशसरोजहंसः काव्यामृतोघरसपानसुतृप्तगात्रः।
सल्लक्षणस्य तनयोनयविश्वचक्षुराशाधरो विजयतां कलिकालिदासः।।

- उदयसेन मुनि

भावार्थ- श्रेष्ठ बघेरवाल वंश के सरोज और हंस, सल्लक्षण के पुत्र आशाधर जिनका गात्र काव्य रूपी अमृत के प्रभूत रसपान से सुतृप्त है, जो नयविश्वचक्षु (विश्व को नय शास्त्र समझाने वाले) और कलिकालिदास (संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास के कलियुगीन रूप) हैं, विजयी हों !

आशाधर त्वं मयि विद्धि सिद्धं निसर्गसौन्दर्यमजर्यमार्यम्।
सरस्वतीपुत्रतया यदेतदर्थे परं वाच्यमयं प्रपञ्चः।।

- कवीश विल्हण

भावार्थ- सरस्वती पुत्र होने के नाते मुझमें परम वाच्य प्रपञ्च (वाग्विदग्धता) स्फुरित होकर आशाधर के अनुरूप अजर, आर्य और नैसर्गिक सौन्दर्य से युक्त यह काव्य रचना करने की सिद्धि प्राप्त हुई।

इस प्रकार सराहना प्राप्त कवि आशाधर का काफी कुछ परिचय उनकी कृतियों की अन्त्य प्रशस्तियों में प्राप्त हो जाता है और उनके सम्बन्ध में ऊहापोह करने से हम बच जाते हैं। **जिनयज्ञकल्प सटीक, त्रिषष्टिस्मृति पञ्जिका, सागार धर्मामृत टीका** और **अनगार धर्मामृत टीका** की प्रशस्तियों के अनुसार जिनेन्द्र के धर्म में श्रद्धा रखने वाले आशाधर मूलतः सपादलक्ष विषयान्तर्गत शाकम्भरी में मण्डलकर दुर्ग के निवासी थे। इनके पिता का नाम श्री सल्लक्षण था और माता का श्रीरत्नी। इनकी पत्नी सरस्वती थी और पुत्र छाहड़ जो नृपति अर्जुन वर्मा का प्रियपात्र था। तुर्कराज साहिबुद्दीन (शाहबुद्दीन गौरी) द्वारा सपादलक्ष पर आक्रमण करने पर, जो विक्रम संवत् १२५० (११९३ ई.) में हुआ अनुमानित है, इनके पिता राजा विन्ध्यवर्मा के साथ सपरिवार मालव मण्डल में आ बसे और वहाँ धारा नगरी में आशाधर ने महावीर नामक पण्डित से जैन शास्त्रों आदि का अध्ययन किया था। राजा अर्जुनवर्मा के राज्यकाल में आशाधर श्रावकसंकुल नलकच्छपुर (धारा नगरी से १० कोस पर स्थित नालछा) में आ बसे थे और वहीं नेमिनाथ चैत्यालय में उन्होंने उपर्युक्त चार कृतियों

का प्रणयन किया था। **जिनयज्ञकल्प सटीक** की रचना परमारवंशी राजा देवपाल अपरनाम साहसमल्ल के समय में विक्रम संवत् १२८५ (१२२८ ई.) में आश्विन मास की पूर्णिमा को पूर्ण हुई थी। और **त्रिषष्टिस्मृति पञ्जिका, सागार धर्मामृत टीका** तथा **अनगार धर्मामृत** टीका की रचना देवपाल के पुत्र जैतुगिदेव के राज्यकाल में क्रमशः विक्रम संवत् १२९२, १२९६ और १३०० में पूर्ण हुई। इन ग्रन्थों की अन्य प्रशस्तियों में आशाधर द्वारा रची गई अन्य कृतियों के नाम भी मिलते हैं। इस बात की पूर्ण संभावना है कि विक्रम संवत् १३०० (१२४३ ई.) के उपरान्त भी आशाधर रचना धर्म में प्रवृत्त रहे हों और उन्होंने और कृतियों का प्रणयन किया हो। विद्वानों ने उनका रचनाकाल लगभग १२०० ई. से १२५० ई. अनुमानित किया है। विविध विषयक लगभग दो दर्जन कृतियों के प्रणयन का उन्हें श्रेय है। उनकी ज्ञात कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत है:-

(१) प्रमेय रत्नाकर - गद्य और पद्य में निबद्ध यह तर्क शास्त्रीय ग्रन्थ है जिसे कृतिकार ने स्याद्वाद विद्या का विशद प्रसाद और निरवद्यपीयूष से पूर्ण बताया है। यह अनुपलब्ध है।

(२) भरतेश्वराभ्युदय काव्य - भरत चक्रवर्ती की मोक्ष प्राप्ति का वर्णन करने वाला अध्यात्म रस से परिपूर्ण यह सत्काव्य, जिसे कवि ने 'सिद्धयङ्क' भी कहा है, सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(३) धर्मामृत शास्त्र - श्रावक और मुनि धर्म का विवेचन करने वाले इस ग्रन्थ का प्रथमतया प्रणयन 'ज्ञानदीपिका पञ्जिका' के साथ हुआ था। बाद में कृतिकार ने इसके 'सागार धर्मामृत' (गृहस्थ धर्म) और 'अनगार धर्मामृत' (मुनि धर्म) भागों पर पृथक्-पृथक् 'भव्यकुमुद चन्द्रिका' नामक टीकाएं रचीं। उक्त पञ्जिका और टीकाओं सहित यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

(४) अष्टाङ्गहृदयोद्योत निबन्धम् - आयुर्वेदविदों के लिये इष्ट **अष्टाङ्गहृदय** अपरनाम **वाग्भटसंहिता** की व्याख्या करने वाली यह टीका अब अप्राप्त है।

(५) मूलाराधना निबन्ध - प्रथम शती ईस्वी के पूर्वार्द्ध में हुए शिवार्य की **मूल आराधना** अपरनाम **भगवती आराधना** की टीका स्वरूप यह कृति शोलापुर से प्रकाशित हुई है।

(६) इष्टोपदेश टीका - पूज्यपाद देवनन्दि (लगभग ४६४-५२४ ई.) कृत **इष्टोपदेश** की मुनि विनयचन्द्र की प्रेरणा से प्रणीत यह टीका माणिकचंद्र ग्रन्थमाला से प्रकाशित हुई है।

(७) **अमरकोष निबन्ध** - अमर सिंह द्वारा रचित संस्कृत **अमरकोश** की यह टीका सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(८) **क्रिया कलाप** की प्रति मुम्बई के पन्नालाल सरस्वती भवन में उपलब्ध बताई जाती है।

(९) **रौद्रट काव्यालंकार टीका** - भद्र रुद्रट के काव्यालंकार की यह टीका अब अनुपलब्ध है, किन्तु इससे नामनिर्देशपूर्वक उद्धरण आशाधर ने अपनी **अनगार धर्मामृत** टीका में दिये हैं।

(१०) **जिन-सहस्रनामस्तवन टीका** - कदाचित् जिनसेन स्वामी (९वीं शती ईस्वी) के **श्री जिन सहस्रनाम स्तोत्र** की यह टीका है जो श्रुतसागर सूरि की टीका के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुकी है।

(११) **जिनयज्ञकल्प सटीक** - सन् १९१७ में जैन ग्रन्थ उद्धारक कार्यालय से **प्रतिष्ठासारोद्धार** नाम से हिन्दी टीका सहित प्रकाशित हो चुका है। इस जिनप्रतिष्ठा शास्त्र की रचना आशाधर ने पापा साहू के अनुरोध पर की थी और इसका प्रतिष्ठाचार्य खण्डेलवाल केल्हण द्वारा प्रचार किया गया।

(१२) **त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र** - जिनसेन स्वामी और गुणभद्रकृत महापुराण में वर्णित ६३ शलाका पुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण और ९ बलभद्र) का वर्णन करने वाले इस शास्त्र की पहले टीका सहित रचना हुई। तदनंतर पण्डित जाजाक की प्रेरणा से उस पर पञ्जिका रची गई जिसमें पुराणों में तथा अन्यत्र प्राप्त कथारत्नों को संक्षेप में अनुस्यूत किया गया। यह स्मृतिशास्त्र टीका सहित माणिकचंद्र ग्रन्थमाला के अंतर्गत प्रकाशित हुआ है।

(१३) **नित्यमहोद्योतं** - अर्हत्देव के अभिषेक और उनकी अर्चना-विधि विषयक यह ग्रन्थ **श्रुतसागरी टीका** सहित प्रकाशित हुआ है।

(१४) **रत्नत्रयविधान शास्त्र** अभी अप्रकाशित है।

(१५) **राजीमती विप्रलम्भ** - नेमिनाथ के दीक्षा ले लेने पर राजुलमती की मनोवेदना का वर्णन करने वाला, टीका सहित रचित, यह खण्डकाव्य सम्प्रति अनुपलब्ध है।

(१६) **अध्यात्म रहस्य शास्त्र** का प्रणयन आशाधर ने अपने पिता के आदेश पर किया था। यह भी अनुपलब्ध है।

(१७) **भूपालचतुर्विंशति टीका** - लगभग ९७५ ई. में गोल्लाचार्य कवि भूपाल

ने २४ तीर्थंकरों की स्तुति में **भूपालचतुर्विंशति स्तोत्र** की रचना की थी। उस पर विनयचंद्र के अनुरोध पर आशाधर ने टीका रची थी जो अभी अप्रकाशित है।

(१८) आराधनासार टीका - यह अनुपलब्ध बताई जाती है।

इनके अतिरिक्त डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने अपने लेख 'जैन स्तोत्र-साहित्य, में (**शोधादर्श**-४२, पृ.-२४०) आशाधर द्वारा रचित **सिद्धगुण-स्तोत्र**, **सरस्वती-स्तोत्र** और **महावीर-स्तुति** का भी उल्लेख उनके **जिन-सहस्रनाम-स्तवन** के साथ किया है। यह विदित नहीं है कि ये स्तोत्र व स्तुति अब उपलब्ध हैं या नहीं।

उपर्युक्त कृतियों के सशक्त सर्जक आशाधर कोई मुनि नहीं थे, वरन् एक गृहस्थ थे। अपने पिता सल्लक्षण और पुत्र छाहड़ की भांति राजसेवा में भी नहीं रहे। नलकच्छपुर में रहकर उन्होंने स्व अध्यवसाय से सरस्वती-आराधना और साहित्य-साधना की थी और विशाल शिष्य समुदाय को अपने समान विविध लौकिक एवं धार्मिक विषयों में पारंगत किया था। वह अपने समकालीन एवं परवर्ती गृहस्थों एवं मुनियों के लिये श्रद्धास्पद बने। यतिपति मदनकीर्ति ने उन्हें 'प्रज्ञापुञ्ज' माना। कवि अर्हद्दास ने अपने **भव्य जन कण्ठाभरण** में इन्हें 'आशाधर सूरि' उल्लिखित किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी जीवन-संध्या में वह कदाचित् संसार से उपरत (वैरागी) हो गये हों, इसलिये उन्हें 'सूरि' और 'आचार्यकल्प' विरुदों से भी सम्बोधा गया हो। उन्होंने स्वयं अपनी **अनगार धर्मामृत टीका** की प्रशस्ति के श्लोक २८ में अपना परिचय 'पंडित आशाधर' के रूप में दिया है। अपनी कृतियों से भारती का भण्डार भरने वाले, 'कलिकालिदास' कहलाने वाले पंडित-कवि आशाधर आज भी विद्वज्जन के लिये प्रेरणास्रोत हैं।

ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६००४

यदेक बिन्दोः प्रचरन्ति जीवाश्चेतत् त्रिलोकीमपि पूरयन्ति।
यद्विक्लवाश्चेममुं च लोकं, यस्यन्ति तत्कश्यमवश्यमस्येत्।।

- सागार धर्मामृत, २, ४

भावार्थ- जिस कश्य (मद्य) की एक बून्द से बहुत से जन्तु उत्पन्न होकर तीनों लोकों अर्थात् सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को भर देते हैं, और जिसे पीकर उन्मत्त प्राणी अपने इस लोक और परलोक को पीड़ामय बना लेते हैं, उस मद्य को अवश्य छोड़ देना चाहिए।

भगवान महावीर का जन्म स्थान

- डॉ. ऋषभचंद्र जैन 'फौजदार'

(शोधादर्श-४४ (जुलाई २००१) के पृष्ठ ५८-५९ पर प्रकाशित हमारे लेख 'जन्म नगरी कुण्डलपुर' में यह प्रतिपादित किया गया था कि भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डग्राम या कुण्डलपुर तत्कालीन विदेह देश में लिच्छवी क्षत्रियों के शक्तिशाली गणतंत्र वज्जिसंघ की राजनगरी वैशाली के सन्निकट थी तथा कुण्ड ग्रामाधिपति राजा सिद्धार्थ वज्जिसंघ के एक गणराजा थे। इस कुण्डग्राम या कुण्डपुर या कुण्डलपुर की पहिचान पुरातत्वविदों एवं इतिहासकारों ने आधुनिक शोध, खोज के आधार पर बिहार प्रान्त के वैशाली जिले में बसाढ़ से २ कि.मी. की दूरी पर स्थित वासोकुंड से की है जिसे अधिकांश प्रमुख जैनाचार्यों व विद्वानों ने स्वीकार किया है। तथापि पू. गणिनी ज्ञानमती जी का अभी भी आग्रह (प्राचीन मगधदेश की राजधानी राजगृह के निकट) नालन्दा जिलांतर्गत कुंडलपुर को ही भगवान महावीर की जन्मस्थली माने जाने के पक्ष में है। उनकी सुशिष्या पू. आर्यिका चंदनामती जी ने सम्यग्ज्ञान (फरवरी-२००२) में प्रकाशित अपने लेख 'बर्जी कुण्डलपुर में बधाई, वैशाली कहां से आई' में इस पक्ष के समर्थन में एक विचित्र तर्क दिया है कि वैशाली कुंडग्राम में अत्यल्प दूरी होने के कारण इन दो रियासतों की पृथक् सत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती और उन्हें एक ही रियासत मानने पर राजा सिद्धार्थ को राजा चेटक का ही घर जमाई जैसा स्वीकार करना पड़ेगा और फिर महावीर यदि वैशाली के युवराज कहे जाएंगे तो राजा चेटक के दस पुत्र किसकी सत्ता के स्वामी कहलायेंगे। पू. आर्यिका जी कदाचित् यह भूल जाती हैं कि वैशाली एक गणतंत्र राज्य था जिसमें वज्जिसंघ में सम्मिलित सभी गणराजा संघ के राज प्रमुख का अपने में से चयन करते थे। उस समय महाराज चेटक वज्जिसंघ के ऐसे ही चयनित गणाधिपति थे तथा उनके निधन या कार्य काल की समाप्ति के बाद कोई दूसरा गणराजा गणाधिपति चुना जाता। किसी भी गणधिपति का राजसत्ता पर वंशानुगत अधिकार होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गणाधिपति के पद पर चयन से पहिले राजा चेटक भी वज्जि संघ के अन्य राजाओं के समान एकाधिक ग्रामों के अधिपति गणराजा ही रहे होंगे।

प्रस्तुत लेख में विद्वान लेखक ने शास्त्रीय उल्लेखों तथा सुप्रसिद्ध चिन्तकों विद्वानों के अभिमत उद्धृत करते हुए वैशाली के निकट कुंडग्राम को भगवान महावीर की सही जन्मस्थली होने के पक्ष का ही समर्थन किया है। - सम्पादक)

भगवान महावीर के २६००वें जन्म शताब्दी महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में भारत सरकार ने वर्ष २००१-०२ को 'अहिंसा वर्ष' घोषित किया है। इस प्रसंग में देश-विदेश में अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए है और हो रहे हैं। इसी प्रसंग में मई-२००१ के 'सम्यग्ज्ञान', अप्रैल-जून-२००१ के 'अर्हत्-वचन' और दिसम्बर-२००१ के 'जैन महिलादर्श' में 'भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डलपुर' शीर्षक निबंध प्रकाशित हुआ है जो पूंज्य आर्यिका चंदनामती माताजी द्वारा लिखित है। उक्त निबन्ध में उन्होंने मगध देश के नालन्दा नामक स्थान के समीपवर्ती 'कुण्डलपुर' ग्राम को भगवान महावीर का जन्म स्थान निर्धारित किया है। उक्त निबन्ध को पढ़ने और पूज्य माताजी से प्रत्यक्ष चर्चा करने के बाद मैं इस संदर्भ में कुछ लिखने के लिए प्रेरित हुआ हूँ।

भगवान महावीर के जन्म स्थान के प्रसंग में कतिपय शास्त्रीय उद्धरण यहाँ दिये जा रहे हैं- - - -

१. सिद्धार्थनृपतितनयो **भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे**।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नानं संप्रदर्श्य विभुः।।
- आचार्य पूज्यपाद (५वीं शती ई.) - निर्वाणभक्ति, पद्य-४

२. अथ देशोऽस्ति विस्तारी **जंबूद्वीपस्य भारत**।
विदेह इति विख्यातः स्वर्गखण्डसमः श्रियः।।२/१।।
सुखाम्भः कुण्डमाभाति नाम्ना **कुण्डपुरं** पुरम्।।२/५।।
- जिनसेन (८वीं शती ई.) - हरिवंशपुराण, २/१ एवं २/५

३. तस्मिन्षण्मासशेषायुष्यानाकादागमिष्यति।
भरतेऽस्मिन्विदेहाख्ये विषये भवनांगणे।।
राज्ञः **कुण्डपुरेशस्य** वसुधारापतत्प्रथु।
सप्तकोटिर्मणिः सार्धा सिद्धार्थस्य दिनम्प्रति।।
- आचार्य गुणभद्र (९वीं शती ई.) - उत्तरपुराण, ७४/२५१-५२

विदेहविषये कुण्डसंज्ञायां पुरि भूपतिः।।
नाथो नाथकुलस्यैकः सिद्धार्थाख्यस्त्रिसिद्धिभाक्।
तस्य पुण्यानुभावेन प्रियासीत्प्रियकारिणी।।
- वही, ७५/७-८

४. श्रीमान**थेह भरते** स्वयमस्ति धात्र्या पुंजीकृतो निज इवाखिलकान्तिसारः।
नाम्ना **विदेह इति** दिग्वलये समस्ते ख्यातः परं **जनपदः** पदमुन्नतानाम्।।
तत्रास्त्यथो निखिलवस्त्ववगाहयुक्तं भास्वत्कलाधरबुधैः संवृषं सतारम्।
अध्यासितं वियदिव स्वसमानशोभं ख्यातं पुरं जगति **कुंण्डपुराभिधानम्**।।

उन्मीलितावधिदृशा सहसा विदित्वा **तज्जन्म** भक्तिभरतः प्रणतोत्तमांगा।
घण्टानिनाद समवेत निकायमुख्या दिष्ट्या ययुस्तदिति **कुण्डपुरं** सुरेन्द्राः।।
- असग (१०वीं शती ई.), वर्धमानचरित, १७/१, ७, ६१

५. अथाऽस्मिन् भारते वर्षे **विदेहेषु** महर्द्धिषु।
आसीत्**कुण्डपुरं** नाम्ना पुरं सुरपुरोत्तमम्।।
- दामनन्दि (११वीं शती ई.), पुराण सारसंग्रह-२, वर्ध. च. ४/१

६. णिवसइ **विदेहु णामेणदेसु** खयरामरेहिं सुहयर-पएसु।।
तहिं णिवसइ **कुंडपुराहिहाणु** पुरुधय-चय-झंपिय-तिव्व भाणु।।
- विबुध श्रीधर (१२वीं शती ई.), वड्ढमाण चरिउ, ६/१, पृ. १६८-६६

७. चुत्वा **विदेहनाथस्य** सिद्धार्थस्याङ् गजोऽजनि।
सोऽत्र कुण्डपुरे शक्रः कृत्वाभिषवणादिकम्।।
- पं. आशाधर (१३वीं शती ई.), त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र, २४/२४

८. अथेह भारते क्षेत्रे **विदेहाभिध** ऊर्जितः।
देशः सद्धर्मसंघाद्यैः विदेहइव राजते।।
इत्यादि वर्णनोपेतदेशस्याभ्यन्तरे पुरम्।
राजते **कुण्डलाभिख्यं**- - - - -।।
- सकलकीर्ति (१५वीं शती ई.), वर्धमान चरित, ७/२, १०

९. बहु जनपद मीझार तु **वीदेह देस** रूपडो ए।
कुंडलपुरं सोहि चंग तु पुरुष नामी जीम ए।
ते नयर तणु नाथ तु कासप गोत्र धणी ए।
सीधारथ भूप जांणतु हरिवंस सिरोमणी ए।।
ते भूप तणी पटरांणी तु नाम **प्रियकारिणी** ए।
- महाकवि पदम् (१६वीं शती ई.), महावीररास, १४/६, १०, १६ एवं २१

१०. अथेह भरते क्षेत्रे **विदेहविषये** शुभे।
भूरिपुरादिसंयुक्ते भाति **कुंडपुरं** पुरम्?
- मुनि धर्मचंद्र (१७वीं शती ई.), गौतमचरित्र, ४/१

११. अब यह आरजखण्ड महान्, देश सहस बत्तीस प्रमान।
तामें दक्षिण दिस गुणमाल, महा **विदेहा देश** रसाल।
सो **विदेहवत है** समुदाय, सब शोभा ता कही न जाय।
कोई तप फल के परभाय, उपजैं वर **विदेह** में आय।।
ताके मध्य नाभिवत जान, **कुण्डलपुर** नगरी सुख खान।।
पुरपति महीपाल मतिमान, श्री सिद्धारथ नाम महान।।
तिनहिं भवन देवी महा, प्रियकारिणी वर नार।।

त्रिशला त्रस रक्षा करण, रूप अधिक परताप।।

- कवि नवलशाह (१८वीं शती ई.),
वर्धमानपुराण, ७/८४, ८५, ९१, १०३, १०८, १०९

१२. समण **भगवं महावीरे** णाते णातपुत्ते णायकुलविणिव्वते
विदेहे विदेहदिण्णे विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहे त्ति कट्टु- ।

- आचारांग, २/१५ सूत्र-७४६ (ब्यावर संस्करण)

१३. समणे **भगवं महावीरे**- - - -नायपुत्ते नायकुलचंदे **विदेहे**
विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले तीसं वासाइं विदेहसि कट्टु- - -।

- कल्पसूत्र- सूत्र - ११० पृ. १६० (प्राकृत भारती संस्करण)

१४. अरहा णायपुत्ते भगवं **वेसालीए** वियाहिए।

-सूत्रकृतांग-१/२/३/२२
- उत्तराध्ययन सूत्र-६/१८

१५. अत्थेत्थ भरहवासे, **कुण्डग्गामं पुरं** गुणसमिद्धं।
तत्थय नरिन्दवसहो सिद्धत्थो नाम नामेणं।।

- विमलसूरि (पहली शती ई.), पउमचरियं, २/२१

१६. सिद्धत्थराय पियकारिणीहिं णयरम्मि **कुंडले** वीरो।
उत्तरफग्गुणिरिक्खे चित्तसियातेरसीए **उप्पण्णो**।।

-यतिवृषभ (दूसरी शती ई.), तिलोयपण्णत्ति, ४/५४६

१७. अह चित्तसुद्धपक्खस्स तेरसीपुव्वरत्तकालम्मि।
हत्थुत्तराहिं जाओ **कुंउग्गामे** महावीरो।।

- आवश्यक निर्युक्ति, गाथा-३०४

१८. अत्थि इह भरहवासे मज्झिमदेसस्स मण्डणं परमं।
सिरि**कुण्डगामनयरं** वसुमइरमणी तिलयभूयं।।

- नेमिचंद्र सूरि, महावीर चरियं

१९. **कुण्डपुरपुर** वरिस्सर सिद्धत्थक्खत्तियस्स णाहकुले।
तिसिलाए देवीए देवीसदसेवमाणाए।।२८।।

- वीरसेन (९वीं ई.), षट्खंडागम (धवला) पु. ९, **खण्ड**-४, भाग-१, पृ. १२२
- वही, कसायपाहुड (जयधवला), भाग-१, पृ. ७८, गाथा-२३

२०. आसाढ़ जोण्हपक्खछट्ठीए **कुंडलपुरणगराहिव**- णाहवंस-सिद्धत्थणरिंदस्स

तिसिलादेवीए गब्भमागंतूण तत्थ अट्ठदिवसाहिय णवमासे अच्छिय
चइत्तसुक्क-पक्खतेरसीए उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते गब्भादो णिक्खंतो।
- वीरसेन, (९वीं शती ई.), षट्खण्डागम (धवला),
पु. ६, ख. ४, भाग- १, पृ. १२१

,, ,, **कुंडपुर**- - - -------- शेष वही।
- वीरसेन (९वीं शती ई.), कसायपाहुड (जयधवला), भाग-१, पृ. ७६-७७

२१. इह जंबुदीवि भरहंतरालि। रमणीय-विसइ सोहाविसालि।।
कुंडउरि राउ सिद्धत्थु सहित्थु। जो सिरिहरु मग्गण- वेस रहिउ।।
- महाकवि पुष्पदन्त (१०वीं शती ई.), वीरजिणिंदचरिउ, १/६, पृ. १०

उक्त शास्त्रीय उद्धरणों से स्पष्ट है कि **भगवान महावीर का जन्म विदेह देश के कुण्डपुर (कुण्डलपुर या कुण्डग्राम) में हुआ था, जो आज 'बासोकुण्ड' नाम से जाना जाता है।** इस तथ्य को स्वीकार करके बिहार सरकार ने यहां सन् १९६५ ई. में (स्व. साहू शांतिप्रसाद जैन के आर्थिक सहयोग से) प्राकृत और जैन विद्या के उच्चतर अध्ययन अनुसंधान के निमित्त 'प्राकृत जैन शास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वैशाली' की स्थापना की थी। संस्थान के भवन तथा जन्म स्थान बासोकुण्ड में महावीर स्मारक का शिलान्यास २३ अप्रैल, १९५६ को भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने किया था।

देश-विदेश के जिन जैन-जैनेतर विद्वानों ने पिछले एक-डेढ़ सौ वर्षों में भगवान महावीर के जन्म स्थान के विषय में विचार किया है, उनमें प्रमुख हैं -

हर्मन जैकोबी, डॉ. ए. एफ. रूडोल्फ होर्नल, डॉ. विन्सेण्ट ए. स्मिथ, डॉ. टी. ब्लॉक, श्रीमती सिंक्लेयर स्टेवेन्सन, डॉ. जाल चार्पेण्टियर, डॉ. डी. वी. स्पूनर, जी. पी. मलाल शेखर, सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, नन्दलाल डे, बी. सी. ला., सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. राधाकुमुद मुकर्जी, श्री रामतिवारी, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, श्री रंगनाथ रामचन्द्र दिवाकर, डॉ. एस. मुकर्जी, प्रो. राधाकृष्ण शर्मा, पं. नरोत्तम शास्त्री, डॉ. सम्पूर्णानन्द, योगेन्द्र मिश्र, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, पं. बलदेव उपाध्याय, टी. एन. रामचन्द्रन, जे.सी. माथुर, डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, श्री नागेन्द्र प्रसाद सिंह, पं. बिहारीलाल शर्मा, ब्र. भूरामल शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर), पं. मूलचंद शास्त्री, श्री चिमनलाल जे. शाह, डॉ. कामता प्रसाद जैन, श्री जे. एल. जैनी, पं. कल्याणविजय गणि, पं. के. भुजबली शास्त्री, विजयेन्द्र सूरि, डॉ. जगदीश चंद्र जैन, पं. सुखलाल संघवी, डॉ. नेमीचंद्र शास्त्री, श्री बी.सी. जैन, डॉ. हीरालाल, आचार्य श्री हस्तिमल्ल जी महाराज, राष्ट्रसंत आचार्य श्री विद्यानंद जी महाराज, महासती चंदना जी ,

डॉ. कैलाशचंद्र जैन, डॉ. ज्योति प्रसाद जैन, श्री अजितप्रसाद जैन तथा डॉ. शशि कांत। इन सभी विद्वानों ने वैशाली के निकट वासो कुंड को ही भगवान महावीर की जन्म स्थली विदेह देशान्तर्गत कुण्ड ग्राम या कुण्डलपुर स्वीकार किया है।

नालन्दा का समीपवर्ती कुण्डलपुर मगध प्रमण्डल के नालन्दा जिले में है। यह क्षेत्र प्राचीन काल में भी मगध के नाम से प्रसिद्ध रहा है। भगवान महावीर का जन्म मगध देश के कुण्डलपुर में हुआ था, ऐसा कोई भी शास्त्रीय प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है।

जैन, बौद्ध और सनातन परम्परा के शास्त्रों में मगध और विदेह दो स्वतंत्र देश बताये गये हैं। सभी परम्पराओं में दोनों देशों का स्थान भी महत्वपूर्ण है। जैन पुराणों में मगध और विदेह का खूब उल्लेख हुआ है, किन्तु वहां इनकी सीमाओं के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। अन्यत्र वृहद्विष्णु पुराण और शक्तिसंगम तन्त्र में मगध और विदेह की सीमाओं का उल्लेख हुआ है। उनके अनुसार प्राचीन विदेह देश का विस्तार पूर्व में कोशी नदी, पश्चिम में गण्डक नदी, दक्षिण में गंगा नदी और उत्तम में हिमालय या चम्पारण तक था। प्राचीन मगध की सीमा पूर्व में मुंगेर (या चम्पानदी) तक, पश्चिम में वाराणसी या (शोण-सोन नदी) तक, उत्तर में गंगा नदी तक और दक्षिण में विन्ध्यपर्वत (या दमूद-दामोदर नदी के उद्गम स्थान) तक थी। इन दोनों देशों के बीच में गंगा नदी प्राचीन काल से बहती आ रही है, जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती है।

शास्त्रीय उद्धरण, विद्वानों के विमर्श एवं मन्तव्य, मगध और विदेह के सीमा सम्बन्धी विवरणों को देखने से यह स्पष्ट है कि भगवान महावीर का जन्म विदेह देश के कुण्डपुर (कुण्डलपुर या कुण्डग्राम) में हुआ था, मगध देशस्थ नालन्दा के समीपवर्ती कुण्डलपुर में नहीं।

- प्राकृत, जैन शास्त्र
और अहिंसा शोध संस्थान
वैशाली- ८४४१२८

महावीर वाणी

जयं चरे, जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए
जयं भुजते भासंत पावकम्मो न बंधाई

- दश वै. सूत्र ६

(यत्न पूर्वक चलने, ठहरने, बैठने, सोने, खाने तथा बोलने से पाप कर्म का बंध नहीं होता।)

चिन्तन कण

श्रमण एवं ब्राह्मण

- डॉ. शशि कान्त

मानव-समाज का चिन्तन दो विचारधाराओं के संघर्ष पर आधारित है। एक विचारधारा स्थितिपालन को प्रश्रय देती है, निहित स्वार्थों का पोषण करती है, सर्व-साधारण को अपनी स्थिति से संतोष करने का उपदेश देती है, समाज की व्यवस्था में परिवर्तन अवांछनीय मानती है। दूसरी विचारधारा स्थितिपालन का विरोध करती है, व्यक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहती है, निहित स्वार्थों पर आघात करती है, समाज की व्यवस्था को स्वतन्त्रता और समानता के आधार पर बदलना चाहती है।

इन विचारधाराओं का संघर्ष चिरन्तन है, सर्वव्यापी है। राजतन्त्र और प्रजातन्त्र, पूंजीवाद और साम्यवाद, चीन में कन्फ्यूशस और ताओ के दर्शन, ईरान में जरथुस्ट और मज्दक-मानियों के सिद्धान्त, भारत में ब्राह्मण और श्रमण धाराएं--ये उसी संघर्ष के द्योतक हैं। यह बात दूसरी है कि जो धाराएं स्थितिपालन का विरोध करती हैं, वह स्वयं भी अपनी व्यवस्था के पोषण में उसी प्रकार लग जाती हैं जिस प्रकार कि स्थितिपालकों के सम्प्रदाय और उनकी मूल स्वतन्त्रता एवं समता की भावना शनैः शनैः लुप्त हो जाती है।

'ब्राह्मण' अर्थात् ब्रह्म पर आधारित अर्थात् दैवी अधिकार से समन्वित और 'श्रमण' अर्थात् श्रम पर आधारित अर्थात् व्यक्ति के पुरुषार्थ अथवा कर्म पर निर्भर-- ये शब्द उनके द्वारा प्रचारित विचारधाराओं को ध्वनित करते हैं।

सभी मानवीय चिन्तन का मूल आधार सामाजिक रहा है। आध्यात्मिक और धार्मिक पक्ष प्रतिपादित व्यवस्था को स्थायित्व प्रदान करने के लिए विकसित किये गये। इन पक्षों द्वारा अपने अनुयायियों की बुद्धि और श्रद्धा पर नियन्त्रण करने-कराने का प्रयास किया गया।

जो वर्ग ब्राह्मण-समाज-व्यवस्था को मानते हैं चाहे वे वेदपरक हों या न हों, उन्हें ब्राह्मण-वैदिक परम्परा के अन्तर्गत समाविष्ट कर दिया जाता है। शिव और विष्णु, दोनों ही वैदिक देवता नहीं हैं, सनातन हिन्दू धर्म के कर्म-काण्ड का भी वैदिक क्रिया-काण्ड से कोई सम्बन्ध नहीं है-- तो भी ये सब परम वैदिक माने जाते हैं। इसका आधार वेदों के प्रति निष्ठा नहीं है, वरन् ब्राह्मण समाज-व्यवस्था का अनुगमन है।

श्रमण-परम्परा के अन्तर्गत उन सभी विचारधाराओं को रखा जा सकता है जिन्होंने किसी भी समय निहित स्वार्थों की पोषक और व्यक्ति की असमानता पर आधारित समाज व्यवस्था का विरोध किया। जैन, बौद्ध, आजीवक, चार्वाक-लोकायत तथा अन्य सुधारवादी चिन्तक इस परम्परा के पोषक थे। जितने अंशों में ये सुधारक विचारधाराएं स्थितिपालकों से प्रभावित होती गईं, अपने मूल ध्येय से विच्छिन्न हो गईं और उतने अंशों में वह श्रमण-परम्परा से हट भी गईं। श्रमण-परम्परा का विशेष आग्रह बुद्धि पर है। आधुनिक बौद्धिकता की पोषक मान्यताएं भी इसके अन्तर्गत आ जाती हैं।

- ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ- २२६००४

महावीर : कितने ज्ञात, कितने अज्ञात

– श्री जमनालाल जैन

भगवान महावीर के विषय में कुछ भी लिखना बड़ा मुश्किल है। वह अत्यन्त अद्‌भुत व्यक्तित्व था। उसे व्यक्तित्व कहना भी अल्पता है। वे व्यक्तित्व से ऊपर उठ गये थे। पकड़ में आने जैसा उनका व्यक्तित्व था ही नहीं। उन्हें कहाँ से पकड़ा जाए, कहाँ से ग्रहण किया जाए, यह तय करना उन लोगों के लिए भी कठिन था जो उनके समय जीवित थे, उनके आसपास उपस्थित थे और जो समग्र रूप से उनकी वाणी को झेलने में तत्पर थे। बरसों तक महावीर का पदानुसरण करने के उपरान्त भी वे लोग भटक गये। बुद्ध जैसे ज्ञानी और श्रेणिक जैसे नृपति भी उस गहरे और अव्यक्त व्यक्तित्व की थाह न पा सके जिसे महावीर जी रहे थे और फैला रहे थे।

महावीर का आना हमारे लिए, हजारों-हजार वर्षों के लिए एक घटना हो गयी है। हम इस घटना पर गर्व करते हैं और कहते हैं कि वह न भूतो न भविष्यति है; लेकिन महावीर के लिए यह घटना अगण्य थी, न कुछ थी। वे घटनाओं की श्रृंखला से उत्तीर्ण हो चुके थे। संसार में लिप्त आंखें घटनाओं की कीमत पर व्यक्तित्व की महत्ता का मूल्यांकन करती हैं, तुला पर व्यक्तित्व को तौलती हैं। हम घटनाओं द्वारा व्यक्तित्व को आंकने के अभ्यस्त हो गये हैं। महावीर ने अपने को घटना में घटित होने से इंकार कर दिया। शरीर के साथ, शरीर-संबंधों के साथ, संसार के बीच जो कुछ होता है, वह सब भरमाने वाला है, भटकाने वाला है। शरीर अगर राख होने वाला है तो उससे संस्पर्शित समस्त घटनायें भी राख होने वाली हैं। इसका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है। अगर महावीर के जीवन में घटनाएं नहीं मिलती हैं तो हम परेशान होते हैं, चिंतित होते हैं, बेचैन होते हैं और अपने को दीन-दरिद्र समझते हैं।

सचमुच अव्यक्त चेतना में और ऊर्जा में होने वाले आनन्द-लोक में, प्रकाश में विचरण करने वाले को समझना और अपने जीवन में उतारना अत्यन्त कठिन है। महावीर यों सबको सुलभ थे, सबके समक्ष समुपस्थित थे और आज भी वे प्रतिक्षण प्रकाशमान हैं, लेकिन हमारी बाह्य आंखें, बाहर भटकने वाली इन्द्रियां, उनको देख नहीं पा रही हैं, क्योंकि हम बाह्यता पर लुब्ध हैं, विमोहित हैं। हमारी निष्ठा की परिधि वस्तुगत, पदार्थगत और घटनागत है। व्यापक-विराट् अव्यक्त दर्शन का अभ्यास हमारी इन्द्रियों को रहा ही नहीं।

हम घटनाओं के द्वारा परमता को, आत्मत्व को उपलब्ध करने के आकांक्षी हैं जबकि महावीर आत्मतत्व को उपलब्ध होकर घटनाओं को तटस्थ भाव से देखते हैं और उनमें प्रविष्ट हो जाते हैं। हम कर्म और क्रिया द्वारा अहिंसक बनने की प्रक्रिया अपनाते हैं और हिसाब लगाते हैं कि इतना-कुछ घटित हो जाने पर मुक्ति उपलब्ध होगी, परन्तु महावीर विलक्षण हैं। वे अहिंसक पहले से हैं और उसी के आलोक में संसृति की घटनाओं के साक्षी बनते हैं। अहिंसा उनकी आत्मा थी, हमारे लिए वह साध्य है। हम घटना के द्वारा, क्रिया के द्वारा, व्रत के द्वारा, चर्या के द्वारा अहिंसा की साधना में संलग्न हैं। यह प्रक्रिया अपने में द्वैतपरक है, हिंसक है, यह बात महावीर ही जान सकते थे, क्योंकि उनकी चेतनता अद्वैत को, एकरूपता को, समग्रता को उपलब्ध हो गयी थी।

हम निषेध की, अस्वीकार, त्याग की, छोड़ने की, पलायन की भाषा में और चर्या में सोचते हैं। हम इतने बाह्य और गणित-प्रिय हैं कि आंकड़ों से और वस्तुगत परिधि से परे को देख नहीं पाते हैं। महावीर विधेय की, स्वीकार की, ग्रहण की प्रक्रिया में विचरते थे। उनके लिए ग्रहण में भी त्याग था और त्याग में भी ग्रहण। उनके लिए त्याग और ग्रहण में कोई अन्तर नहीं रह गया था।

महावीर ने जो कुछ छोड़ा, वह छोड़ा नहीं था, वह आपोआप छूट गया था, क्योंकि उन्हें उत्कृष्ट या विराट् उपलब्ध हो गया था। निकृष्ट को छूटना ही था। नसैनी का जब ऊपरी डंडा हाथ आ जाता है तो नीचे का डंडा अपने आप छूट जाता है। उसे छोड़ने का प्रयास नहीं करना पड़ता है। जब बढ़िया वस्तु हाथ लगती है तो घटिया अपने आप छूट जाती है। महावीर ने क्या-क्या छोड़ा था यह शायद वे स्वयं न बता सके। पर हम बता सकते हैं, एक पूरी तालिका दे सकते हैं कि हमने क्या-क्या छोड़ा, क्योंकि हम छोड़कर प्राप्त करने की आशा या अभीप्सा में तन को गलाते हैं। महावीर इतने आनन्दोपलब्ध थे, ज्ञानचेतना से भरे थे कि बाहर का अपने-आप छूट गया।

सत्य और मिथ्या को जांचने की कसौटी बाह्यता नहीं है। बाहर से हिंसक दीखने वाली घटना में भी परम अहिंसा हो सकती है और अहिंसक दीखने वाली घटना भी घोर हिंसामय हो सकती है। इसीलिए महावीर घटना से अधिक उसकी आंतरिक भूमिका को, उसके रहस्य को महत्व देते थे। इसी अर्थ में वे ज्ञाता-द्रष्टा थे और इसी के लिए अनेकान्त की कसौटी उन्होंने प्रस्तुत की। किताबी कानून या संहिता ऐसे लोगों के लिए बेमानी होती है। महावीर जैसे द्रष्टा-ज्ञाता ही जान सकते हैं कि बाह्यतः दीखने वाली अहिंसा के भीतर कितना आग्रह, कितना अहंकार और दर्प है।

महावीर सहज नग्न थे, सहज विहारी थे, वीतरागी थे, लेकिन उनकी छवि को भी हमारी आंखें बिना रागद्वेष के नहीं निहार सकतीं। उनकी सर्वांगसुन्दर-सहजमूर्ति में भी हम 'अश्लीलता' को ढांकने का 'बाल' प्रयास करते हैं। अपनी भोगाकांक्षा, कायासक्ति की तृप्ति भी हम प्रतिकार के द्वारा करना चाहते हैं।

जो ग्रन्थ और ग्रन्थियों से सर्वथा मुक्त थे, उनको हम ग्रन्थों में खोजना चाहते हैं और ग्रन्थों में आबद्ध करना चाहते हैं, क्योंकि हम स्वयं प्रमाण बनने के बदले ग्रन्थ-प्रामाण्य में विश्वास करते हैं। जिन्हें स्वयं का विश्वास नहीं होता, जिन्हें अपने पथ का ज्ञान नहीं होता, वे ही ग्रन्थ और पथ में उलझते हैं। ग्रन्थों से हम अपनी चर्या तय करते हैं। ग्रन्थ के मरे हुए सत्य को हम अपना जीवनधर्म बना लेते हैं। महावीर के पीछे ग्रन्थों का ढेर लगा कर हम महावीर के व्यक्तित्व को विस्मृत कर गये हैं। उनका जीवन्त, तेजस्वी व्यक्तित्व ग्रन्थों में छिप गया है। अब हम उनकी देह के साथ अपने को एकरूप करने के प्रयास में संलग्न हैं। परिणामतः राजनीति और अर्थनीति हम पर हावी है। यह महावीर ही जानते थे कि ग्रन्थों का सत्य सजीव नहीं होता, क्योंकि सत्य निरन्तर नया होता है और वह सर्वथा वर्तमान में ही रहता है। अतीत तो स्मृतिमात्र होता है।

- अभयकुटीर, सारनाथ (वाराणसी)

महावीर जन्माष्टक

- विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया

त्रिशला रानी कुक्षि से,
जन्मे बालक रूप।
कुण्डग्राम गर्वित हुआ,
पाकर रूप अनूप।।१।।

रत्नों की वर्षा हुई,
शमन हुये संताप।
बहुत बधायें गूँजते,
ले-ले निज आलाप।।२।।

प्रमुख पाँच घटना घटीं,
ले कल्याणक रूप।
प्राणी हुये निहाल, कर
दर्शन आत्म-स्वरूप।।३।।

संयम औ तप-तेज से,
जगा दिये सब दीन।
दास प्रथा का अंत हो,
जियें सभी स्वाधीन।।४।।

पाप नाशने हेतु हैं,
अणु व्रत के संस्कार।
जियें सभी औ स्वयं भी,
उपजें विमल-विचार।।५।।

अनेकान्त से अंत हो,
वैचारिक सब द्वन्द्व।
समता से छूटें स्वयं
भोग-भाव स्वच्छन्द।।६।।

श्रम से जागें सभी में,
सम्यक् शुभ उपयोग।
नसते संग्रह जब करें,
अपरिग्रही प्रयोग।।७।।

सत्य अहिंसा के बने,
महा मसीहा आप।
तुम्हें वंदना जग करे,
जपें नित्य तव-जाप।।८।।

- मंगल कलश
३९४, सर्वोदय नगर
आगरा रोड, अलीगढ़

तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है

- डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त'

तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है
जन्म शती में अखिल विश्व का चिर अभिनंदन है।

सत्य अहिंसा प्रेम का तुमने अनुपम मंत्र दिया
जिसको अपना गांधी जी ने देश स्वतंत्र किया
भव्य जनों ने काटे अपने भव के बंधन हैं
तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है।

दीन दुखी पीड़ित मानवता का उद्धार किया
दुखते जलते अपमानित जीवन को प्यार किया
तब वाणी भव तापित जन मन के हित चन्दन है
तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है।

जग में भ्रमित दुखी मानव कष्टों से अकुलाते
कोई साथ न देता तो वे शरण तुम्हारी आते
शरण तुम्हारी आत्म-पुष्प से सुरभित मधुवन है
तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है।

जियो और जीने दो सबको यह सन्देश दिया
मानवता की परिभाषा को नव परिवेश दिया
महावीर सन्देश आज मानवता का सच्चा धन है
तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वन्दन है।

जड़-चेतन मानव प्रशु-पक्षी रस विभोर होते सब प्राणी
सब भाषा गर्भित खिरती जब महावीर की अमृत वाणी
समवशरण में दिव्य स्वरों में जब जब होता रस वर्षण है
तीर्थंकर श्री महावीर का शत शत वंदन है।
जन्म शती में अखिल विश्व का चिर अभिनंदन है।

- डी- ११/६, राजेन्द्र नगर, लखनऊ- २२६००४

जैन धर्म का मूल तत्व 'अहिंसा'

- डॉ. आर. टी. सांवलिया

आदिनाथ ऋषभदेव से लेकर वर्द्धमान महावीर पर्यन्त २४ जितेन्द्रिय तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट धर्म 'जैन धर्म' के नाम से जाना जाता है। सत्य, अस्तेय, शौच और इन्द्रिय निग्रह पर बल देने वाले 'जैन धर्म का परमतत्व 'अहिंसा' है। इसमें मन, वचन और देह से किसी को कष्ट न पहुंचाना सच्ची अहिंसा माना गया है। जैन आचार विचार में अहिंसा को प्रधानता दी गई है। केवल यज्ञयागादि में अथवा सामान्य खान-पान के लिए हिंसा का निषेध नहीं किया गया है, अपितु मनुष्य के सभी व्यवहारों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उनमें कहां-कहां हिंसा का प्रसंग आता है, इसकी खोज की गई है, और उसे किस तरह रोका जाय अथवा वह कम से कम हो इसके लिए बारीक देखरेख की व्यवस्था भी की गई है। जैसे कि कंदमूल खाना नहीं, रात्रि में भोजन करना नहीं आदि। इसीलिए आचार्य आनंदशंकर ध्रुव ने कहा है, 'जैन धर्म का खरा तत्व 'अहिंसा' और 'संयम' इन दो शब्दों में समाया हुआ है।''

वैसे तो भारत की वैष्णव, बौद्ध आदि प्रायः सभी धार्मिक परम्पराओं में अहिंसा को परम धर्म माना गया है और सभी ऋषि-मुनि, साधु-संत इत्यादि उपदेशकों ने अहिंसा का महत्व और उपयोगिता बताई है, अहिंसा के इस तत्व को जितना विस्तृत, सूक्ष्म, गहन और आचरणीय जैन धर्म ने बनाया है उतना किसी दूसरे धर्म ने नहीं बनाया है। जैन धर्म के प्रवर्तक अहिंसा तत्व को चरम सीमा तक पहुंचा चुके हैं। उन्होंने केवल अहिंसा का कथन मात्र ही नहीं किया परन्तु उसका वैसा ही आचरण भी करके बताया है। जैन धर्म का अहिंसा तत्व वाचिक और मानसिक से परे आत्मिकरूप बन गया है। दूसरों की अहिंसा की मर्यादा मनुष्यों और अधिक से अधिक पशु-पक्षी जगत तक जाकर समाप्त हो जाती है, परंतु जैनों की अहिंसा की कोई मर्यादा नहीं है। उसमें सम्पूर्ण चराचर जीव जाति का समावेश हो जाने पर भी वह अमित है। वह विश्व की तरह अमर्याद, अनन्त है, और आकाश की तरह सभी पदार्थों में व्याप्त है।

कुछ लोगों का मानना है कि हमारी पराधीनता का कारण अहिंसा है। परंतु भारत की पराधीनता का कारण अहिंसा न होकर अकर्मण्यता, अज्ञानता और असहिष्णुता है। इस सबका मूल हिंसा है। भारत का पुरातन इतिहास खुलकर बता रहा है कि जब तक भारत में अहिंसा प्रधान धर्मों का अभ्युदय रहा तब तक प्रजा में शांति, शौर्य, सुख और संतोष व्याप्त रहे थे।

अहिंसा धर्म के उपासक और प्रचारक मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त और अशोक महान थे। क्या उनके समय में भारत पराधीन था? अहिंसा धर्म के कट्टर अनुयायी दक्षिण के कदंब, पल्लव और चौलुक्य वंश के प्रसिद्ध महाराजा थे। क्या उनके राज्यकाल में किसी परचक्र ने आकर

भारत को सताया था? अहिंसा तत्व का अनुयायी सम्राट हर्ष भी था। अहिंसा मत का पालन करने वाले दक्षिण के राष्ट्रकूट नृपति अमोघ वर्ष और गुजरात के चालुक्य प्रजापति कुमारपाल भी रहे। क्या उनकी अहिंसोपासना से देश की स्वतंत्रता नष्ट हुई थी ? इतिहास साक्षी है कि इन राजाओं के राज्यकाल में भारत अभ्युदय के शिखर तक पहुंच गया था।

जिन्हें गुजरात और राजस्थान के इतिहास का थोड़ा बहुत भी वास्तविक ज्ञान है वे जानते हैं कि इस देश को स्वतंत्र, समुन्नत और सुरक्षित रखने में जैनों ने कैसे-कैसे पराक्रम किये थे। जिस समय गुजरात राज्य का भार जैनों के हाथों में था उस समय गुजरात का ऐश्वर्य उन्नति की चरमसीमा तक पहुंच गया था। केवल गुजरात ही नहीं, अपितु समग्र भारत के इतिहास में इन अहिंसा धर्म के परमोपासकों के पराक्रम की बराबरी कर सके ऐसे पुरुष बहुत कम मिलेंगे।

अहिंसा की भावना से प्रजा में सात्विक वृत्ति विकसित होती है। जहां सात्विक वृत्ति का विकास हे वहां सत्व का निवास है। इसके विपरीत सत्वहीन जीवन निकृष्ट और नीच गिना जाता है। जिस प्रजा में सत्व नहीं होता वहां संपत्ति, स्वतंत्रता आदि कुछ भी नहीं होता। इसलिए प्रजा की नैतिक उन्नति में अहिंसा एक प्रधान साधन माना गया है। नैतिक उन्नति के मुकाबले भौतिक प्रगति का कोई स्थान नहीं है।

जैन शास्त्रकारों ने अहिंसा के अनेक प्रकार बताये हैं। स्थूल अहिंसा, सूक्ष्म अहिंसा, द्रव्य अहिंसा, भाव अहिंसा, स्वरूप अहिंसा, पदार्थ अहिंसा, देश अहिंसा और सर्व अहिंसा। कोई भी स्थावर-जंगम प्राणी अथवा जीव को जान से न मारने की प्रतिज्ञा का नाम स्थूल अहिंसा है। सब प्रकार के प्राणियों को किसी प्रकार क्लेश न पहुंचाना सूक्ष्म अहिंसा है। किसी जीव को अपने शरीर से दुःख न देने का नाम द्रव्य अहिंसा है। यही बात स्वरूप अहिंसा और पदार्थ अहिंसा के बारे में भी कही जा सकती है। किसी अंश में अहिंसा का पालन करना देश अहिंसा कहलाती है। और सब तरह-संपूर्ण रूप में अहिंसा का पालन करता सर्व अहिंसा कहलाती है।

आत्मा के अमरत्व की प्राप्ति के लिए और संसार के बंधनों से मुक्ति पाने के लिए अहिंसा का संपूर्ण रूप से पालन करना आवश्यक है। ऐसा किये बिना मुक्ति कभी भी नहीं मिल सकती। फिर भी संसारनिवासी तमाम मनुष्यों में एकदम ऐसी पूर्ण अहिंसा का पालन करने की शक्ति और योग्यता आ नहीं सकती, इससे न्यूनाधिक योग्यतावाले मनुष्यों के लिए ऊपर कही रीति के अनुसार तत्वज्ञों ने अहिंसा के भेद रचकर क्रमानुसार इस विषय में मनुष्य के उन्नत होने में सरलता कर दी है। अहिंसा के इन भेदों को लेकर अधिकारियों में भी भेद किया गया है। जो मनुष्य अहिंसा का पूरी तरह से पालन न कर सकता हो वह गृहस्थ-श्रावक-उपासक-अणुव्रती-देशव्रती आदि कहलाता है। जब तक मनुष्य में हर प्रकार के मोह और प्रलोभन रहते हों उन्हें सर्वथा छोड़ देने की आत्म शक्ति प्रकट नहीं होती तब तक वह संसार में रहते हुए भी धीरे-धीरे अहिंसाव्रत के पालन में उन्नति करता रह सकता है। यथासंभव वह

अपने स्वार्थों को कम करता जाय और अपने स्वार्थ के लिए प्राणियों के प्रति मारण-ताडन-छेदन-आक्रोशन आदि क्लेशजनक व्यवहारों का परिहार करता जाय।

जब तक वह गृहस्थ है, तब तक समाज, देश और धर्म की यथाशक्ति रक्षा करना उसका परम कर्तव्य है। यदि भ्रांतिवश अपने कर्तव्य से च्युत हो जाय तो उसका नैतिक अधःपतन होता है। यह नैतिक अधःपतन एक सूक्ष्म हिंसा हैं क्योंकि इससे आत्मा की उच्चवृत्ति का हनन होता है। अहिंसा धर्म के उपासक को चाहिए कि अपने स्वार्थ या लोभ के निमित्त स्थूल हिंसा का पूरी तरह त्याग करें। जो मनुष्य अपनी विषय-वासना की पूर्ति के लिए स्थूल प्राणियों को क्लेश पहुंचाता है वह कभी किसी तरह अहिंसा धर्मी नहीं कहलाता।

जो मनुष्य अहिंसा व्रत का पूरी तरह पालन करते हैं, वे सब मुनि भिक्षु-श्रमण-संन्यासी-महाव्रती आदि शब्दों से संबोधित किये जाते हैं। वे संसार के सब कार्यों से दूर और अलिप्त रहते हैं। उनका कर्तव्य केवल आत्मकल्याण करना है और जो मुमुक्षु उनके पास आये उसे आत्मकल्याण का मार्ग बतलाना है। उनकी आत्मा विषय-विकार तथा कषाय भाव से परे रहती है। जगत के सभी प्राणी उनके लिए आत्मतुल्य हैं। यह 'मैं' और यह 'दूसरा' इस प्रकार का द्वैतभाव उनके हृदय में से नष्ट हो जाता है। उनके मन, वचन और कर्म तीनों एक रूप हो जाते हैं। सुख-दुःख अथवा हर्ष-शोक में उनके मन में एक ही स्वरूप दिखायी देता है। जिसने इस प्रकार की स्वरूपावस्था प्राप्त कर ली है वही महाव्रती है।

आचार्य उमास्वामी ने 'तत्वार्थसूत्र' में हिसा का लक्षण बताते हुए लिखा है कि, **'प्रमत्त योगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा'** अर्थात् प्रमत्त भाव से याने विषय-कषाययुक्त होकर प्राणियों के प्राण का नाश किया जाना हिंसा है। जो जीव विषय-कषाय के वश होकर किसी भी प्राणी को दुःख अथवा कंष्ट पहुंचाता है वह हिंसा के पाप का बंध करता है। हिंसा की व्याप्ति केवल शरीर से कष्ट पहुंचाने तक की नहीं है, वरन् वचन उच्चारण और मन से इस प्रकार का चिंतन करने तक है। जिस विषय-कषाय के वश होकर कोई व्यक्ति दूसरों के लिए अनिष्ट भाषण अथवा अनिष्ट चिन्तन करता है, वह भाव भी परार्थ यानी दूसरों की हिंसा है। इसके विपरीत जो व्यक्ति विषय-कषाय से विरक्त है उसके हाथों कभी किसी प्रकार की हिंसा हो भी जाय तो उसकी ये हिंसा परार्थ हिंसा नहीं कहलाती।

'हिंसा' और 'अहिंसा' का विश्लेषण मनुष्य की भावना पर अवलंबित है। किसी काम के शुभाशुभ बन्धन का आधार कर्ता के मनोभाव पर है। मनुष्य जिस भाव से कर्म करता है, उसी के अनुसार उसे फल मिलता है। कर्म की शुभाशुभता उसके स्वरूप में नहीं परन्तु कर्ता के विचार में रहती है। जिस कर्म को करने में कर्ता का विचार शुद्ध है, वह शुभ कर्म कहलाता है और जिस काम को करने में कर्ता का विचार अशुभ हो तो वह अशुभ कर्म कहलाता है। उदाहरणार्थ- एक डॉक्टर किसी बीमार को शल्यक्रिया करने हेतु क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करता है, और

एक चोर अथवा खूनी किसी मनुष्य का धन अथवा प्राण हरणे करने के लिए उसे क्लोरोफार्म सुंघाकर बेहोश करता है। यद्यपि कर्म की क्रिया की दृष्टि से दोनों में जरा भी अन्तर नहीं है किन्तु उद्देश्य और फल की दृष्टि से जहां डाक्टर को सम्मान मिलता है वहीं चोर या खूनी को भयंकर सजा दी जाती है।

इस प्रकार तमाम कर्मों में मनोभाव की ही प्रधानता है। इसलिए आत्मिक विकास हेतु सबसे पहले मन को शुद्ध और संयत बनाना आवश्यक है। जिसका मन इस प्रकार शुद्ध और संयत बनता है तो फिर वह किसी प्रकार के कर्मों से अलिप्त रहता है।

इसके विपरीत जिसका मन शुद्ध और संयत नहीं, जो विषय तथा कषाय से लिप्त है वह बाह्य दृष्टि से अहिंसक होते हुए भी तात्विक दृष्टि से हिंसक है। इसीलिए कहा गया है कि **'अहणंतो विहिंसो दुट्ठत्तणओ मओ अहिमरोव्व'** जिसका मन दुष्टभावों से भरा हो वह किसी को न मारे तो भी वह हिंसक ही है।

व्यक्ति के आत्मोन्नयन के लिये ही नहीं, समाज और देश के उन्नयंन के लिये भी हिंसा का त्याग करके अहिंसा की साधना का मार्ग अपनाना अभीष्ट है। और अहिंसा की साधना के लिए अंतर्मुख और बहिर्मुख दोनों तरह से जीवन को सुधारना अपेक्षित है।

जिस समाज और जीवमात्र के बीच में हम जीते हैं उन्हें अपने जीवन में सहानुभूति, प्रेम और सद्भाव का अनुभव इस प्रकार होना चाहिए कि वह अहिंसक जीवन अपनाने की ओर प्रेरित हो।

- भो. जे. विद्याभवन
आश्रम रोड, अहमदाबाद- ३८०००६

जिनवाणी

अप्पा हि खलु संययं रक्खियव्वो

- दश वै. चूर्णी २-१८

(अपनी इन्द्रियों और भावनाओं पर सदा नियन्त्रण रखना चाहिए।)

सव्वमप्पे जिए जियं

- उत्तराध्ययन सूत्र ९-३६

(जिसने अपने को जीत लिया उसने सारे संसार को विजय कर लिया।)

शुद्धाम्नाय : स्वरूप और उत्पत्ति

- डॉ० राजेन्द्र कुमार बंसल

शुद्धाम्नाय को मूल आम्नाय से जाना जाता है। मूल आम्नाय की मूल मान्यताएं इस प्रकार हैं- वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु ही परम इष्ट और पूज्य हैं। रागी और असंयमी अपूज्य हैं। वीतरागता की प्राप्ति वीतराग भाव-बोध सहित शुद्धात्मा की उपलब्धि से होती है। शुद्धात्मा की उपलब्धि शुद्ध नय के अवलम्बन से होती है। साध्य के अनुरूप साधन होने के कारण व्यवहार धर्म की पूजा-पाठ आदि क्रियाएं प्रासुक, पवित्र, अहिंसक और अचित्त हों। अहिंसा की सम्यक् साधना अपरिग्रह, अनेकान्त और संयम से होती है तथा भाव विहीन शरीर की व्रत उपवास आदि की क्रियाएं सारहीन होती हैं।

मानव स्वभाव सुविधाभोगी और अहं समर्पित होता है। इसके लिये वह शाश्वत मर्यादाओं और प्रकृति की व्यवस्थाओं का उल्लंघन करने से नहीं चूकता। इससे विकृति एवं शिथिलाचार उत्पन्न होता है। विकृति और शिथिलाचार से वीतरागी-मूल-संघ की रक्षा करना ही शुद्धाम्नाय की सहज स्वाभाविक-शाश्वत-प्रक्रिया है जो बिना विशिष्ट नाम पाये आदि काल से चली आ रही है। भगवान महावीर के निर्वाण के ५६३ वर्ष पश्चात् आचार्य अर्हत्वली द्वारा मूल संघ को नन्दिसंघ, वीर संघ, सेन संघ, अपराजित संघ, पंचस्तूप संघ, भद्र संघ, गुणधर संघ, गुप्त संघ, सिंह संघ, चन्द्र संघ आदि में विभाजित कर दिया गया। शिथिलाचार के पोषण के कारण बाद में कुछ और जैनाभासी संघ जैसे- काष्ठा संघ, माथुर संघ, यापनीय संघ, द्राविड़ संघ आदि बने। इससे पूजा पद्धति आदि में भिन्नता हुई और सावद्य क्रियाओं का, पूजा-पाठ का प्रवेश हुआ। मूल संघ रूप शुद्धाम्नाय द्वारा इसका विरोध हुआ।

आचार्य भद्रबाहु के काल में उत्तर भारत में बारह वर्षीय अकाल पड़ा। इससे मुनिचर्या विकृत हुई। इसके पोषण में श्वेताम्बर सम्प्रदाय का जन्म हुआ। मूल संघ की रक्षार्थ आचार्य कुन्दकुन्द देव ने पंच परमागम की रचना की और सम्यक्त्व विहीन तथा वस्त्रधारियों को अवंदनीय घोषित किया। इसी प्रकार भाव विहीन शरीर क्रियाओं को मोक्षमार्ग में निःसार बताया। विकृत श्रमणाचार को 'नट श्रमण' नाम दिया। आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने दर्शन-ज्ञान और चारित्र की शुद्धता पर बल दिया और अध्यात्म परक ग्रंथों की रचना की। इस कारण आचार्य कुन्दकुन्द को मूल आम्नाय या शुद्धाम्नाय का प्रणेता माना गया है। कालान्तर में यही मूल संघ तेरापंथ के नाम से जाना गया।

दक्षिण भारत में शैव सम्प्रदाय एवं कतिपय धर्म-विमुख राजाओं द्वारा जैन धर्म और समाज पर भीषण अत्यचार किये गये जिनका वर्णन **समणमुतमिलं** एवं **शैव तिरुतोण्डर** पुराणों में मिलता है। इसके करुण दृश्य मदुरै के मीनाक्षी मंदिर की दीवार पर उत्कीर्ण हैं। यहां प्रतिवर्ष दश दिन का स्मृति-स्वरूप उत्सव का आयोजन अभी भी होता है। अन्यत्र अनेकों ऐसी लोमहर्षक घटनाएं घटीं। इनसे अपनी रक्षा हेतु जैन धर्मावलंबियों ने अपनी पूजा-पद्धति को वैदिक रूप में बदला ताकि प्रथम दृष्टि में जैन-अजैन का भेद न दिखे। बाद में यह परिवर्तन परम्परा बन गयी और सावद्य सामग्री का पूजा-पद्धति में प्रवेश हो गया। इसी प्रकार देश-काल की परिस्थितियों में धर्मरक्षा के नाम पर जैन जगत में भट्टारकीय परम्परा विकसित हुई। अनेकों स्थानों पर भट्टारकीय गद्दियां स्थापित हुईं। कालांतर में इस परम्परा में अनेक विकृतियां आयीं जिसका विरोध शुद्धाम्नायी महानुभावों द्वारा समय-समय पर किया गया।

भट्टारकीय शास्त्र विरुद्ध विकृतियों का विरोध तेरहवीं शताब्दी के पंडित प्रवर आशाधर जी ने अपनी कृति **धर्मामृत-अनगार** में किया। इसके दूसरे अध्याय में ६६वें **श्लोक** में पण्डित जी ने द्रव्य रूप से जिन लिंगधारी अजितेन्द्रिय दिगम्बर मुनियों और द्रव्यलिंगधारी मलेच्छाचारी मठपति भट्टारकों को संसर्ग के अयोग्य एवं मिथ्यादृष्टि कहा। और अष्टम अध्याय के ५२वें श्लोक में असंयमी गुरु, कुलिंगी, शासनदेव एवं रुद्र आदि कुदेव को अवंदनीय घोषित किया। उन्होंने **अध्यात्म रहस्य** लिखकर जैन-योग-विद्या को प्रकाशित किया। विलक्षण व्यक्तित्व के धनी पण्डित जी ने शुद्धात्म तत्व की प्राप्ति का वीतरागपरक मार्ग प्रशस्त किया और लोकाचार का भी निर्वाह किया।

जैन धर्म भावना प्रधान धर्म है जो द्रव्य-दृष्टि रूप आत्मानुभव से प्रारम्भ होता है। व्यवहार धर्म की क्रियाएं इसमें साधक का काम करतीं हैं। यह क्रियाएं तभी फलीभूत होती हैं जब साधक की दृष्टि शुद्धात्मोपलब्धि पर होती है। साधक इन क्रियाओं में उलझ कर न रह जाये और आत्म-विमुख न हो जाये अतः समय-समय पर आचार्य-मुनियों द्वारा तत्व और अध्यात्म निरूपक रचनाएं की गईं। इनका लक्ष्य शुद्धाम्नाय की पुष्टि एवं विकास रहा। इन रचनाओं में आचार्य रामसेन का **तत्वानुशासन,** आचार्य योगेन्दुदेव का **योगसार** एवं **परमात्म प्रकाश,** आचार्य अमितगति का **योगसार प्राभृत,** आचार्य पूज्यपाद का **इष्टोपदेश** और **समाधितंत्र,** आचार्य सोमदेव का **अध्यात्म तरंगिणी,** मुनिराज रामसिंह का **दोहा पाहुड,** आचार्य अमृतचन्द्र देव का **समयसार कलश,** आचार्य श्री चन्द का **वैराग्यमणि माला,** आचार्य देवसेन का **तत्वसार** और **आराधनासार,** भास्कर नंदि का **ध्यान स्तव,** आचार्य शुभचंद्र का **ज्ञानार्णव** आदि प्रमुख हैं। इन रचनाओं से समाज में शुद्धाम्नाय

पोषक दृष्टिकोण की पुष्टि हुई और वीतरागधर्म पल्लवित हुआ।

विक्रम की पंद्रहवीं- सोलहवीं शताब्दी में जैन संस्कृति पर संकट के बादल छाये जबकि मुस्लिम अत्याचारों से जैन संस्कृति, मंदिर-मूर्तियां निर्ममतापूर्वक खंडित की गईं और वीतराग धारा अवरुद्ध हुई। चारों ओर भय छाया रहा। ऐसे संकट के समय सम्वत् १५०५ में विलहरी (कटनी) ग्राम में श्री तारण स्वामी का जन्म हुआ। उन्होंने जैन आगम का गहराई से अध्ययन किया और जनमानस में अध्यात्म की धारा प्रवाहित की। आपने लोकमूढ़ता, रूढ़िवाद और पाखण्ड पर जमकर प्रहार किये। उनके प्रभाव से लाखों जैन-जैनेतर भाइयों ने अध्यात्म का मार्ग अपनाया जो बाद में तारणपंथी या समैया कहलाये। श्री तारण स्वामी ने चौदह मौलिक ग्रंथ लिखे जिनमें **श्रावकाचार, मालारोहण, पंडित पूजा, कमल बत्तीसी** और **ममल पाहुड** प्रसिद्ध हैं। **ममलपाहुड** में आत्मानुभूति और अध्यात्म की मार्मिक चर्चा है। तारण स्वामी वर्तमान तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक कहे जा सकते हैं।

यह सुखद संयोग है कि बुन्देलखण्ड की जैन समाज एवं वहां के भट्टारक महानुभाव प्रारंभ से ही मूल शुद्धाम्नाय के पोषक रहे। वहां मूर्ति लेखों में अनेक जगह 'मूल आम्नायेशुद्धे' शब्द का प्रयोग भी इसी कारण किया गया है। वहां की जनता ने सवस्त्र भट्टारकों को न तो गुरू माना और न ही शासन देवी-देवताओं को ही पूजा। आज भी शुद्धाम्नाय की मूल धारा बुन्देलखण्ड में प्रवाहित हो रही है। पंडित प्रवर जगन्मोहनलाल जी के अनुसार सोलहवीं सदी के आसपास इसी परम्परा में कविवर बुचराज एक सद्गृहस्थ हुए। उन्होंने अध्यात्म विचारधारा से ओतप्रोत **'चेतन पुदगल-संवाद'** नामक रचना लिखी। कालान्तर में आध्यात्मिक विचारधारा वाले विद्वानों/श्रावकों की शैलियां चलीं। इन शैलियों का राजस्थान में काफी प्रसार हुआ। विद्यमान स्वाध्याय मंडल इन शैलियों का परिष्कृत रूप है। सवस्त्र भट्टारकों को गुरु मानने वाला एवं सचित्त वस्तुओं से पूजा-पाठ करने वाला दिगम्बर जैन समाज का वर्ग बीसपंथी कहलाया।

विक्रम की १७वीं शताब्दी में पं. बनारसीदास जी का आगरा में उद्भव हुआ। उन्होंने **नाटक समयसार, बनारसी विलास** आदि रचनाओं के माध्यम से शिथिलाचार का विरोध और शुद्धाम्नाय का प्रचार किया। आपका काल वि.सं. १६४३-१७०१ रहा। आपके विरोध में श्वेताम्बराचार्य महामहोपाध्याय श्री मेघ विजय ने वि.सं. १७५७ में आगरा में रहकर **'युक्ति प्रबोध'** नामक प्राकृत ग्रंथ स्वोपज्ञ संस्कृत टीका सहित बनाया था, जिसका उद्देश्य श्री बनारसीदास जी के अध्यात्म मत का खंडन था।

पं. टोडरमल के समकालीन व उनके प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी एवं भट्टारकीय परम्परा के पोषक पंडित बख्तराम साह वि.सं. १८२१ में अपनी रचना **'मिथ्यात्व खंडन'** में लिखते हैं, "तेरा (तेरह) पंथ सबसे पहले वि.सं. १६८३ में आगरा में चला"। श्वेताम्बराचार्य श्री मेघविजय (वि.सं. की अठारहवीं शती) ने **'युक्ति प्रबोध'** में वि.सं. १६८० में तेरापंथ की उत्पत्ति मानी है। जबकि ब्र. रायमल जी ज्ञानानंद **श्रावकाचार** में तेरापंथ को अनादि निधन मानते हैं। इसे कोई नया पंथ नहीं मानते। ब्र. भाई रायमल जी पं. टोडरमल जी के अनन्य सहयोगी थे।

तत्ववेत्ता डॉ. हुकमचंद भारिल्ल ने अपने शोध प्रबंध **'पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व'** के पृष्ठ २० में लिखा है कि "उक्त तेरहपंथ में बाह्याचार की अपेक्षा आत्मशुद्धि पर विशेष बल दिया गया तथा बिना आत्मज्ञान के बाह्य क्रियाकाण्ड को व्यर्थ माना गया। पूज्य के स्थान पर केवल पंच परमेष्ठी को मान्य किया। पूजन में शुद्ध जलाभिषेक व प्रासुक द्रव्य को अपनाया। मूर्ति पर किसी प्रकार का लेप या पुष्पारोहन अमान्य ठहराया क्योंकि उससे वीतराग छवि में दूषण लगता है।"

पं. बख्तराम साह कृत **'मिथ्यात्व खंडन'** के अनुसार व्यापारी लोग व्यापार हेतु आगरा जाते थे और वहां से अध्यात्मी बनकर लौटते थे। वे दिन-रात रुचिपूर्वक तत्वचर्चा करते थे (दोहा २६/२७)। आगरा के बाद इसका प्रचार कांमा (भरतपुर के पास) में हुआ (दोहा २२)। पश्चात् जयपुर के निकट सांगानेर में भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के समय में इसका प्रचार हुआ (दोहा २५)।

विक्रम की १७ वीं १८ वीं शताब्दी में तेरापंथ का प्रचार-प्रसार आचार्यकल्प पं. टोडरमल जी, पं. दौलतरामजी कासलीवाल, ब्र. रायमल जी, पं. श्री जयचंद छाबड़ा, पं. सदासुख दास जी, पं. भूधर दास जी, पं. दीपचंद जी शाह आदि द्वारा अपनी-अपनी अध्यात्म रचनाओं, व्याख्यानों, अध्यात्म ग्रंथ की टीकाओं, विधानों एवं तत्वचर्चा आदि के माध्यम से किया गया। इनके पश्चात् इन महानुभावों के अनुयायियों ने तेरापंथ की ज्योति प्रज्वलित रखी। इन सबका केन्द्र जयपुर रहा। इसके प्रभाव से उत्तर भारत में भट्टारकीय परम्परा समाप्त हो गयी।

अध्यात्म विरोधी जनों के तीव्र विरोध के बाद भी तेरापंथ की पवित्र धारा सतत् बह रही है। बीसवीं शताब्दी में बुंदेलखंड के संत पूज्य श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी और सौराष्ट्र के सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी और उनके सहस्रों अनुयायियों तथा विद्वानों द्वारा तेरापंथ की धारा को पुष्ट किया गया। आज उनके प्रभाव से स्थान-स्थान पर तत्वचर्चा एवं तत्व प्रचार की धूम मची है।

'परवार जैन समाज का इतिहास' ग्रंथ की प्रस्तावना, पृष्ठ-३५, में पं. प्रवर जगन्मोहनलाल जी 'तेरहपंथ और वीसपंथ' उपशीर्षक में लिखते हैं कि "बुन्देलखण्ड की दि. जैन समाज प्रारंभ से ही मूलसंघ की शुद्धाम्नाय मान्यताओं की पालक रही है और कालान्तर में इसे ही यहां तेरहपंथी आम्नाय कहा जाने लगा। वर्तमान समय में तेरहपंथ आम्नाय की समाज में कुछ विसंगतियां शिथिलाचारी दि. जैन (निर्वस्त्र) साधुओं के संसर्ग से आ रही है। अतः समाज को इन विसंगतियों को दूर करने का दृढ़तापूर्वक प्रयत्न करना चाहिये और परम्परागत मूल-शुद्धाम्नाय की रक्षा करना चाहिये। सवस्त्र भट्टारकों का युग अब समाप्त हो गया है तथा अब दि. (निर्वस्त्र) साधुओं का उद्भव प्रखुमता से देश के बहुभागों में प्रायः हुआ है। परन्तु भट्टारक युग की मान्यता/आचरण/शिथिलाचार, जो मूल आम्नाय का विकृत रूप जाना और माना गया है, उसका स्वरूप फिर से कई निर्वस्त्र साधुओं में भी पाया जाने लगा है। यंत्र, तंत्र-मंत्र, भौतिक लाभ का प्रलोभन, शासन देवी-देवताओं की पूज्यता तथा मुनित्व के तेरह प्रकार के चारित्र से विचलित साधु से सम्बद्ध होकर श्रावक उन्मार्ग की ओर अग्रसर हो रहे हैं, जो युक्ति युक्त नहीं है। अतः आगम की कसौटी से कस कस कर देव-शास्त्र-गुरु में श्रद्धान करना ही उपादेय है।" पं. जगन्मोहनलाल जी का उक्त कथन एवं सुझाव जैन धर्मावलंबियों को जागरूकतापूर्वक जीवन में अपनाना अपेक्षित है अन्यथा हम लोकाचार में, छिपे मार्ग से, अपनी शुद्धाम्नाय से विमुख होकर अनंत संसारी बन जावेंगे।

तेरापंथ भावबोधक है न कि संख्यामूलक। वस्तुतः भेद- विज्ञानपूर्वक विचार कर देखा जाये तो तेरह या तेरा पंथ नाम का कोई पृथक् पंथ नहीं है। तेरापंथ की जो पूजा सम्बंधित मान्यताएं हैं वे अहिंसा और अपरिग्रहमूलक सहज प्रवृत्तियां हैं जिनका संबंध क्रिया की अपेक्षा भावों से अधिक है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि देशकाल एवं परिस्थितियों के संदर्भ में सुरक्षा-रक्षा की दृष्टि से वीतरागता से मेल न खाने वाली जो वाह्य प्रवृत्तियां अपना ली गई थीं, उन्हें सहज ही छोड़कर मूलधारा में सभी को सम्मिलित हो जाना चाहिये। इसी में आत्महित है। सभी भव्य आत्माएं शाश्वत् वीतराग मार्ग को अपना कर शुद्धात्मा को अनुभूत कर परमात्मा बने, यही तेरा-परमात्मा बनने का पंथ है। तेरापंथ-परमात्मा के पंथ पर आरूढ़ सभी भव्य आत्माओं का अभिनंदन है।

- बी. ३६६, ओ.पी.एम.कालोनी
अमलाई, जिला-शहडोल (म.प्र.)- ४८४११७

जैन धर्म

- श्री कैलाश भूषण जिन्दल, एडवोकेट

ज्यादा करके धर्मों ने ईश्वर को दुनिया का सरजनहार माना है। वही दुनिया को बनाता है, और वही दुनिया को बिगाड़ता है। जैनी ईश्वर को जरूर मानते हैं, पर उनकी निगाह में ईश्वर का दुनियां से कोई सम्बन्ध नहीं है। संसार हमेशा से चला आया है और हमेशा चले जायेगा। यह तो प्रकृति का नियम है- प्रकृति अनादि है, अनन्त है। संसार का न कभी शुरू हुआ और न कभी अन्त होगा। ईश्वर न हमारा पिता है और न बनाने वाला। हम तो अपने आप प्रकृति से बने हैं, और ईश्वर केवल हमारी आत्मा का शुद्ध स्वरूप है-वह परमात्मा है, वह रूहे-पाक है।

इन्सान एक मुरक्कब चीज़ है। यह चीज़ जिसको आदमी कहते हैं, दो चीज़ों से मिलकर बनी है। इन दोनों चीज़ों में एक जीती-जागती, समझती-बूझती चीज़ है जिसको जीव या आत्मा या रूह कहते हैं; यह रूह हमारे हवासों से परे है- इसको न देखा, न सूंघा, न सुना, न चखा, न छुआ जा सकता है। दूसरी चीज़ बेजान, गुम-सुम जड़-पदार्थ, माद्दा है। माद्दे को हम अपने पांचों हवासों से महसूस कर सकते हैं। यह दोनों चीज़ें मिलकर एक तीसरी जानदार, चलती-फिरती, बोलती-चालती देह-धारी मशीन की शक्ल में तब्दील हो जाती है।

जीव और अजीव, रूह और माद्दा, आत्मा और जड़ पदार्थ-यह दोनों चीज़ें हमेशा से हैं। इन दोनों से मिला हुआ इन्सान व हैवान महेज रूह का कालिब है। जिसको हम नाश कहते हैं ? वह देहधारी आत्मा का मर जाना नहीं है बल्कि एक शरीर से दूसरे शरीर में चला जाना है। आत्मा अमर है,और देह नाशवान। "लोग कहते हैं फ़ना, पर है बका मेरे लिए"। इस कौल के मुताबिक आत्मा एक देह से दूसरी देह में चलती फिरती रहती है। दुनियां में अनगिनत आत्माएं इस तरह चक्कर लगाती रहती हैं। इस चक्कर से मुक्ति पा जाना, जड़-पदार्थ से दोबारा न मिल जाना, आत्मा की सबसे बड़ी कामयाबी है। दुनिया के चक्कर (transmigration) से नजात पाई हुई आत्मा ही परमात्मा है। वही जैनियों का ईश्वर है--खुदा है।

परमात्मा कोई एक खास व्यक्ति नहीं है। वह तो जितनी मुक्त आत्माएं हैं, उनका संग्रहात्मक (collective) नाम है। हममें से हर कोई एक न एक दिन परमात्मा हो सकता है, पर हम अभी यह नहीं कह सकते कि भविष्य में आपमें से कौन कौन परमात्मा होंगे। हां, इतना बेशक जानते हैं कि गुजिश्ता जमाने में ऐसे अनेक व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने अपने पुरुषार्थ से परमात्मा पद प्राप्त किया था तथा उनमें २४ ऐसे प्रमुख महापुरुष थे जिन्होंने स्वयं तो इस परम पद को प्राप्त किया ही, दूसरों को भी परमात्मा बनने का मार्ग दिखाया। इन महान् आत्माओं को हम तीर्थंकर कहते हैं। सबसे पहले तीर्थंकर ऋषभनाथ थे और सबसे आखिरी महावीर। यह वर्ष भगवान महावीर का २६००वां प्रकाश वर्ष है और सारे भारत में बड़ी धूमधाम से मनाया

जा रहा है। महावीर भगवान गौतम बुद्ध के समकालीन थे। उन्हें जैन धर्म का संस्थापक मानना जैनेतर सम्प्रदायों की बड़ी भारी भूल है। भगवान महावीर स्वामी से पहले २३ तीर्थंकर और हुए हैं। इन २४ तीर्थंकरों में से भी किसी एक ने जैन धर्म को पहले पहल नहीं चलाया। जैसे हम यह नहीं बता सकते कि दुनिया कब शुरू हुई, ऐसे ही हम यह भी नहीं कह सकते कि जैन धर्म कब शुरू हुआ। जैनियों की मान्यता है कि जैन धर्म हमेशा रहा है और रहेगा। यह धर्म किसी व्यक्ति का सिद्धान्त (Philosophy) नहीं है। यह तो सत्य के नियमों का समावेश है। यह सत्य जैन धर्म, और इस सत्य के मानने वाले जैनी। हमारे तीर्थंकरों ने कोई नई बात नहीं बताई, परन्तु समय-समय पर जनता को सत्य का मार्ग दिखाते रहे हैं। जो मार्ग उन्होंने दिखाया वह ही जैन धर्म है। तीर्थंकरों का भाषण किसी एक खास ज़बां में नहीं हुआ। चाहे इंसान हो, चाहे हैवान- सभी अपनी अपनी भाषा में तीर्थंकरों के उपदेश को समझ लेते थे।

अब सवाल यह उठता है कि यह उपदेश इस इक्कीसवीं शताब्दी में हम तक कैसे पहुंचा? तीर्थंकरों के खास चेलेगण गणधर कहलाते थे। गणधरों की परम्परा कई सौ वर्ष तक तीर्थंकरों का सिद्धान्त एक दूसरे को ज़बानी बताती चली आयी। और ईसा से १०० वर्ष बाद वह सिद्धान्त किताबों में लिखा गया।

जैन शास्त्रों के मुताबिक जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त दो हैं- अहिंसा और कर्म सिद्धान्त।

अहिंसा के माने यह हैं कि किसी भी प्राणी को जहां तक हो सके किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक-जिस्मानी या रूहानी कष्ट नहीं देना चाहिये। हत्या करना, मारना सबसे बड़ी हिंसा है। आप कहेंगे कि खाना खाने में भी तो हिंसा है, क्योंकि सर जगदीश चंद्र बोस की खोज ने यह साबित कर दिया है और जैनी भी इस बात को मानते हैं कि फल, तरकारी में भी जान है। ठीक, मगर फल-तरकारी में जानवरों की बनिस्बत जीवन की अभिव्यक्ति कम मात्रा में है और जानवरों में आदमियों से कम। जहां तक हो सके हिंसा से अधिक से अधिक बचने की कोशिश करनी चाहिए। फल खाना गोश्त खाने से बेहतर है क्योंकि फल खाने में कम पाप है। और अपने आपको भूखा मार डालने में सबसे ज्यादा पाप है। एक पांच हवास वाले इंसान की ज़िन्दगी के लिए एक हवास वाली फल-तरकारी के नाश करने में कोई हानि नहीं। "To do a greater right, do a little wrong."

जैनियों का दूसरा बड़ा सिद्धान्त कर्म-सिद्धान्त है।

गीता में कर्म के माने काम के हैं, पर जैन धर्म में कर्म का एक विशेष ही अर्थ है। कर्म पुद्गल के छोटे-छोटे परमाणु (Atoms of matter) को कहते हैं। ये ही परमाणु आत्मा को बंधन में रखते हैं, और इन्हीं परमाणुओं से मुक्ति पाना परमात्मा हो जाना है।

कर्म का असर इतना प्रबल है कि वह आत्मा को इतना दबा सकता है कि उसकी रूहानी शक्ति इतनी कमजोर हो जाए, जैसा कि हम दरख्तों, पौधों, बेलों और घास वगैरह में देखते हैं। माद्दा की ताकत घटने और आत्मा की शक्ति बढ़ने से जो रूह दरख्त में थी, वह कीड़े-मकोड़े के शरीर में आकर खाने-पीने और चलने-फिरने लगती है। चूंटी के जिस्म में सूंघने की ताकत भी पायी जाती है। भौंरा देख भी सकता है। जब वह ही रूह जानवर के शरीर

में आती है, तो बोलने-चालने, सोचने-समझने लगती है। इन्सानी-सूरत में मनुष्य जन्म पाकर आत्मा की ताकत का ज़हूर, उसका प्रकाश, इस कदर बढ़ जाता है कि इंसान ईश्वर का अवतार, खुदा का पैगम्बर, खुदा का बेटा कहलाने लगता है। बल्कि दरअसल खुदा हो जाता है-

जो फरिश्ते करते हैं, कर सकता है इन्सान भी।
पर फरिश्तों से न हो जो, काम है इन्सान का।।

इन्सान खुदा क्यों नहीं हो जाता और हैवान क्यों बना रहता है। इसका साफ और सीधा जवाब यह है कि इंसान अपनी असलियत को भूल बैठा है। कैदखाने में रहते रहते, कैदखाने से मुहब्बत हो गई है। उसी को अपना घर समझ रखा है। और अपनी ताकत को भुला बैठा है। समझता है कि मुझमें इस कैदखाने से निकलने की ताकत ही नहीं। और जो उसको उसकी असलियत का जौहर बतलाता है, उससे भी यह कह उठता है-

आबो-दाने से कफस के कुछ हमें उल्फ़त नहीं।
बे परों-वाली से अपने आशिके-सयूयाद हैं।।

अपनी लाचारी, बेचारगी पर अफसोस करता है। मगर उस अजली और अब्दी, अनादि और अनन्त, हमेशा की ओर बराबर रहने वाली गुलामी से निकलने की कोशिश नहीं करता। गुलामी के टुकड़े से पेट भरने का शौक हो गया है। ख्वाहिशात नफसानी के फन्दे में पड़ा है और अपनी बेड़ियों को अपने अफ़ाल से बजाए तोड़ने के मजबूत करता जाता है। जिस रस्सी में बंधा है-उसके फंदे बजाये खोलने और सुलझाने के-कसता और उलझाता जाता है।

सरापा आरजू होने ने, बन्दा कर दिया मुझको।
वरना हम खुदा थे, गर दिल-ए-बे मुद्दा होता।।

ख्वाहिशात नफसानी, इन्द्रियों के विषय--क्रोध, मान, माया, लोभ और वस्तु-संग्रह--इन बातों से दुनिया के जाल में गहरा फंसना पड़ता है। इन उपाधियों को छोड़ना-इस जाल से निकल जाना है।

संसार जाल से निकलने का प्रयत्न जितना बन सके-उतना करना उचित है। ऐसा करने से दिन प्रतिदिन आत्मिक शक्ति बढ़ती जायेगी, कर्मों की निर्जरा (shedding off) होती जायेगी। यम-नियम आदि में आनंद मालूम होगा; वह आनंद बढ़ता जायेगा। जिसको लोग तपस्या कहते हैं- उसमें तपस्वी को परमानन्द की प्राप्ति होती है। आत्मिक आनंद के मुकाबिले में संसार-सुख, राज्य, हुकूमत--दुख ही है। स्वराज्य, आत्मा की स्वतंत्रता, मोक्ष, आजादी--ऐसा सुख-आनंद है जिसमें लेश-मात्र भी दुःख का मिलाव नहीं-- जो हमेशा रहेगा, जो ईश्वर का पद पा जाना, परमात्मा हो जाना है।

जैन धर्म ने हर एक मनुष्य के लिए मुक्ति का द्वार खोल दिया है। हम लोग सब कुछ ईश्वर के हाथ में नहीं छोड़ देते हैं, बल्कि स्वयं ईश्वर बनने की कोशिश में लगे रहते हैं। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। इसी कारण जैन धर्म में अकर्मण्यता (inaction) नहीं आने पाई है। यही जैन धर्म की विशेषता है।

- अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ-२२६०१८

The Archaeology of Faith- Lord Rishabhdeo

- Shri AJIT PRASAD JAIN

Prof. R. S. Sharma, The well-Known Historian, in his article entitled "The Archaeology of Faith" published in the Hindustan Times of February 12, 2002 (Lucknow Edition) has, while strongly criticising the deletion of certain passages from NCERT book "Ancient India" for class XI, made, inter alia, the following observations:

"In my book published in January 2001, I wrote that the Jains strongly believe that Rishabhdeo was the first Tirthankar and the Founder of Jainism--- (But as Eastern U.P. and Bihar in which traditionally many Tirthankaras were born and carried on their activities were hardly settled by the sixth century B.C, I wrote that the historicity of the earliest Tirthankaras, is doublful and their existence seems to be mythological. The activities of Rishabhdeo are traditionally associated with Prayag and Ayodhya. But archaeologically none of the two sites was even fairly settled until 500BC. Traditionally chronology would place Rishabhdeo around the ninth Century BC. Ajit Jain, a Jaina scholar, Questinrs the historicity of the firsh Tirthankara in a Jain Researach Journal Shodhadarsha (November 1998) because in his view Ayodhya was uninhallitated until the 8th century B.C.".

The relevant passage of my article "भगवान ऋषभदेव की निर्वाण भूमि" published on page 303 of Shodhadarsh (November 1998) on which Prof. Sharma has relied for my views on the historicity of Lord Rishabhdeo. is quoted below :

"पिछले कुछ वर्षों में मुख्यतया पू० आ० विद्यानन्द ज़ी व पू० आर्यिका ज्ञानमती जी की प्रेरणा से भगवान ऋषभदेव पर कई विचार गोष्ठियां आयोजित हुई हैं। क्या ही अच्छा होता यदि विद्वानों के इन जमावड़ों में भगवान ऋषभदेव की कल्याणक भूमियों की सही पहिचान पर भी प्रकाश डलवाया गया होता। अभी तो उनकी तथा भगवान राम की अयोध्या के विषय में कुछ विद्वानों का मानना है कि वह कहीं भारत के उत्तर–पश्चिम में (तक्षशिला या काबुल के आसपास) रही होगी। वर्तमान अयोध्या में ८वीं शताब्दी ईसा पूर्व से पहिले की मानव बस्ती के कोई चिह्न अभी तक नहीं प्राप्त हुए हैं– -- –"

In the above passage I had questioned the existence of

Bhagwan Rishabhdeo's Ayodhya at the popularly believed present site in Faizabad district of U.P., since the Archaeologists have not found any trace of human settlement there before the 8th century B.C. I have, however, no where questioned the historicity or antiquity of Lord Rishabhdeo who I firmly believe to have been born at the time of dawn of Civilization in this land in the hoary past thousands and thousands years ago. Since Prof. Sharma hismisquoted me in his above mentioned article, I had to issue a rebuttal, which has been published in the Hindustan Times of Feb. 18, 2002 (Luncknow Edition) as under.....

Existence of Ayodhya

Prof. R. S. Sharma has misquoted me in his article 'The archaeology of faith' (H.T. 12.2.2002). In the 'Shodhadarsha (Nov. 1998)' I have nowhere questioned the historicity of Lord Rishabhadeva, the first Tirthankara, who, I do firmly believe, was born thousands and thousands of years ago at the dawn of civilization in this land.

I had simply advocated that in the seminars being held on Lord Rishabhadeva, the sacred spots associated with him should be properly identified.

It was not my view but that of the archaeologists who hold that the excavations conducted in and around Ayodhya so far do not place human habitation there beyond 8th century. B.C. and this view is also shared by Prof. Sharma himself who limits the upper limit further to 500 B.C.

In my view, either the river Saryu has changed its course since the times of Lord Rishabhadeva and his Ayodhya lies in its waterbed or it might have been situated elsewhere or even somewhere in the North-West Frontier of this land, as suggested by a Pakistani scholar some time ago.

The existence or non-existence of Ayodhya at the present site before 800 B.C. does not affect the historicity of Lord Rishabyadeva.

Paras Sadan, Arya Nagar, Lucknow

अर्जुन माली

- श्रीमती सुधा जिन्दल

(श्वेताम्बर जैन आम्नाय के द्वारा मान्य अंगसुत्त 'अन्तगढ दशाओं' के षष्ठ वर्ग, अध्ययन ३ में हमें अर्जुन माली नाम के उग्र तपस्वी का वर्णन मिलता है जिन्होंने भगवान महावीर के संघ में राजगृह में दीक्षा प्राप्त की थी। अर्जुन माली की पत्नी बंधुमती का अपहरण और हत्या किन्हीं दुष्टों द्वारा किये जाने के कारण अर्जुन माली विक्षिप्त हो गया था और राजगृह के निवासियों की प्रतिशोध स्वरूप हत्याएं करने लगा था। बाद में सुदर्शन नाम के श्रमण उपासक के साथ भगवान महावीर का दर्शन कर और उनके उपदेश सुनकर उसका चित्त निर्मल हो गया। इसी कथानक को श्रीमती सुधा जिन्दल ने प्रस्तुत नाटक में ५ दृश्यों में अंकित किया है। उसके प्रथम दो दृश्य इस अंक में दिये जा रहे हैं - सम्पादक)

स्थान यक्ष मन्दिर, समय प्रातः की प्रथम बेला।

पात्र : अर्जुन माली व उसकी पत्नी बन्धुमती।

(मदनोत्सव की तैयारी। यक्ष मन्दिर को सजाने का कार्यक्रम। बन्धुमती फूलों की माला गूंथ रही है। और मन ही मन सोच रही है।)

बन्धुमती : आज की प्रातः बेला कितनी-सुन्दर और लुभावनी है। सूर्य की स्वर्णिम किरणें पृथ्वी को स्पर्श करने को कितना आतुर हैं। चारों ओर कितने सुन्दर-सुन्दर पुष्प खिले हैं। मन करता है कि सुगन्ध की तरह मैं इनमें समा जाऊं। (अर्जुन माली का प्रवेश) "प्रिय, तुम आ गये। देखो, कितने सुन्दर-सुन्दर पुष्प खिले हुए हैं।"

अर्जुन : "हां, तुमने भी तो कितने सुन्दर-सुन्दर पुष्प चुने हैं बन्धुमती"। (कुछ फूलों को हाथ में लेकर) "कितने मनमोहक हैं वे, बिल्कुल तुम्हारे जैसे।") (ठोड़ी पर हाथ लगातें हुए)।

बन्धुमती : "फिर वही अठखेली। बड़े वो हो प्रिय! जल्दी से यक्ष मंदिर को साफ कर दो तब तक मैं पुष्पों की माला पिरो रही हूं। देख रहे हो अभी कितना काम शेष है।"

अर्जुन- "प्रिये, यह माला रख दो। पल भर के लिए मुझे इन मृगनयनी आंखों को देखने दो। मैं तुम्हारी इन झील सी आंखों में खो जाना चाहता हूं।" (दोनों हाथों में मुखड़े को लेकर उसकी आंखों में देखता रहता है)।

बन्धुमती : "यह क्या कर रहे प्रिय। देखो, देखो, सम्भवतः कोई आ रहा है।"

अर्जुन - (आंचल पकड़कर) "नहीं, बन्धुमती। मुझसे दूर मत जाओ। मुझे अपने आंचल की तरह अपने गले से लगा लो। मुझे अपने हृदय की धड़कनों में समाहित कर लो प्रिय।"

बन्धुमती - "मेरा सारा जीवन आपके लिए ही तो समर्पित है प्रिय। फिर उतावली क्यों?"

अर्जुन - "मेरी प्रार्थना अस्वीकार मत करो बन्धुमती।"

बन्धुमती - "मैं सच कहती हूं स्वामी, यह जीवन आपका है। लेकिन अभी नहीं "... (उंगली से इशारा करके मुस्कराती हुई दूर हट जाती है)।

अर्जुन - "अच्छा इस बार मदनोत्सव पर मेरे साथ नृत्य करोगी ना?"

बन्धुमती - "अब मेरे पैरों में वह थिरकन कहां?"

अर्जुन - "नहीं, बन्धुमती! मेरे इस अनुरोध को तुम अस्वीकार मत करना। मैं वर्ष भर इस दिन की प्रतिक्षा करता रहा हूं।"

बन्धुमती -"ठीक है। लो ये मालायें और अब जल्दी से इन्हें यक्ष भगवान के मंदिर में सजा दो।"

अर्जुन - "यह पहली माला यक्ष भगवान से पूर्व तुम्हारे गले में।"

बन्धुमती - "अरे, यह क्या कर दिया प्रिय। यह लो इसे आप ही पहन लो।" (अपने गले से उतार कर माला अर्जुन माली के गले में डाल देती है। अर्जुन बन्धुमती के दोनों हाथ पकड़कर उसका चुम्बन लेना चाहता है, किन्तु बन्धुमती अपना हाथ उसके मुंह पर रख देती है)।"

अर्जुन - "इस मदनोत्सव पर मुझे क्या दोगी, बन्धुमती ? कितने दिनों से मैं तुमसे याचना कर रहा हूं। पर तुम हो कि अनसुना करती चली जा रही हो।"

बन्धुमती - (पुनः मुंह पर हाथ रखकर) "यह आज तुम्हें क्या हो गया है प्रिय? मुझे लगता है कि मदनोत्सव का रंग तुम्हारे अंग-अंग में समा गया है। इसीलिए तुम्हें अपना कर्तव्य भी विस्मरण हो गया है। अभी तुम्हें यक्ष मन्दिर, राजगृह का राजपथ, राजमहल इत्यादि सभी कुछ सजाना है। ये सम्पूर्ण कार्य महाराज की सवारी निकलने से पूर्व हो जाना चाहिए।"

अर्जुन - "हां, बन्धुमती। किन्तु जब तुम्हारा साथ है तो मुझे यह सब करने में कुछ भी तो देर नहीं लगेगी। यह मधुमय बसन्ती मौसम, यह मन्द-मन्द चलती पवन, आपस में आलिंगन करती पुष्पित लतायें, प्रातः की लालिमायुक्त सुन्दर बेला। इस कामोत्तेजक रमणीय वाटिका में हम और तुम, बन्धुमती। सम्भवतः ऐसे ही वातावरण में विश्वामित्र की तपस्या....."

बन्धुमती - "अधिक भावुक न बनो। लो ये मालायें ले चलो और भगवान यक्ष के मन्दिर को सजाओ चलकर।"

(इधर दूसरी ओर से दो बदमाश,बन्धुमती को एकटक लगाये देख रहे हैं। वे आपस में बातें कर रहे हैं)।

पहला - "देख लिया न बन्धुमती को आज। इस के रूप के चर्चे दूर-दूर तक हैं। लगता है स्वर्ग से उतर कर आयी है।"

दूसरा - "हां, है तो बड़ी सुन्दर। लेकिन यह अनमोल हीरा इस मूर्ख अर्जुनमाली के हाथ में कैसे आ गया?"

पहला - "सुना है वन्धुमती के पिता ने बचपन में ही अर्जुनमाली के पिता को वचन दे दिया था। अब उसे क्या मालूम था कि रूप की अनिंद्य सुन्दरी भिखारी की झोली में जा रही है।"

दूसरा - "यौवन तो इसके अंग-अंग से फूट पड़ रहा है।"

पहला - "एक उपाय बताऊँ। चल इस मदनोत्सव पर बन्धुमती को कहीं उठाकर ले चलते हैं।"

दूसरा -"अरे वाह तूने तो मेरे हृदय की बात कह दी। क्या यौवन है?" (कुछ सोच कर) "लेकिन यह काम होगा कैसे?"

पहला (सोचकर) "ऐसा करते हैं कि पहले अर्जुनमाली के हाथ-पैर रस्सी से बांध कर मुंह पर कपड़ा लपेट देते हैं। और तू पीछे से आकर बंधुमती के मुंह पर कपड़ा डालकर उठा ले जाना। फिर मैं पीछे से आ जाऊंगा।"

दूसरा- "अरे वाह, क्या युक्ति लगाई है ! चल जल्दी कर, वरना सवेरा हो जायेगा।" (अर्जुन माली व बन्धुमती दोनों फूलों को उठाकर सजाने के लिए जाते हैं कि पहला बदमाश आकर अर्जुनमाली को रस्सी से बांधने लगता है। अर्जुनमाली चिल्लाता है तो उसके मुंह पर कपड़ा लपेट देता है।)

अर्जुन- "अरे-अरे यह क्या कर रहे हो? कौन हो तुम ?" (दूसरा बदमाश आकर बंधुमती को पकड़ लेता है)। "अरे, मेरी बन्धुमती को क्यों पकड़ रहे हो? मेरे हाथ-पैर क्यों बांध रहे हो? तुम लोग बोलते क्यों नहीं? क्या चाहते हो तुम लोग?"

पहला- "बस अब ठीक है। तू इसे लेकर भाग।"

अर्जुन- "अरे कोई है? बचाओ, बचाओ। ये मेरी बन्धुमती को पकड़े लिये जा रहे हैं।"

(वदमाश बंधुमती को रस्सी से बांधकर उठा ले जाते हैं)

(दूसरा दृश्य)

स्थान पनघट, समय प्रातः ९/१० बजे

पात्र - दो पनिहारियां- मेखला और सौदामिनी।

(पानी की गगरी लिये हुए बातें कर रही हैं। मेखला सौदामिनी को पुकारती है)

मेखला- "सौदामिनी, अरी ओ सौदामिनी। जल्दी आ कितनी पीछे रह गई है।"

सौदामिनी- "अरे धीरे-धीरे चल। मैं जल्दी-जल्दी नहीं चल पा रही हूं।"

मेखला- "क्यों, क्या हो गया री?"

सौदा.- "कल नदी से पानी भरते समय फिसल गयी थी ना?"

मेखला- (पास जाकर चुटकी लेते हुए) "अरी, झूठ काहे बोलती है? मैं सब जानती हूं। तेरी आंखें बता रही हैं कि फिर तेरे पैर भारी हो गये हैं।"

सौदा.- "चल हट! मेरी आंखों में क्या है? तू बडी नटखट है। हर समय ऐसी चुलबुली बातें करती रहती है। तू मुझे बहुत परेशान करती है।"

मेखला- "देखती हूं, तू मुझसे कब तक छुपायेगी। आज नहीं तो कल सामने तो आ ही जायेगा।" (हंसती है) "आ थोड़ा सुस्ता ले।"

सौदा.-"अरे, अब चुप भी कर। अगर किसी ने सुन लिया तो क्या कहेगा?"

मेखला - "यही कहेगा कि नन्हा-मुन्ना फूल खिलने वाला है।..अच्छा ये बता मदनोत्सव में गयी थी क्या?"

सौदा - "नहीं री मेखला। अब मुझसे अधिक नहीं चला जाता। और इस हालत में दो कोस चलकर राजमहल जाना कितना कठिन है।"

मेखला - "इस बार वह आनन्द नहीं था।"

सौदा० - "क्यों क्या हुआ? इस उत्सव को देखने तो दूर-दूर से लोग आते हैं? पूरे वर्ष सब लोग प्रतिक्षा करते हैं इस मंगलोत्सव की।"

मेखला - "अबकी बार बन्धुमती नहीं थी उत्सव में। उसके जैसा नृत्य कोई नहीं कर सका। अर्जुनमाली ने भी कोई विशेष सजावट नहीं की थी।"

सौदा० - "क्यों? ऐसा क्यों हुआ?"

मेखला - "अरे! तूने सुना नहीं क्या? कुछ बदमाश बन्धुमती को यक्ष मन्दिर से उठा ले गये। और अुर्जनमाली को भी हताहत करके मंदिर में बांधकर छोड़ गये। यदि समय से लोग न पहुंच जाते तो बेचारे अर्जुनमाली के भी प्राण-पखेरू उड़ जाते।"

सौदा० -"तो क्या अभी तक वे बदमाश राज्य कर्मचारियों द्वारा पकड़े नहीं गये। बन्धुमती का कुछ पता चला?"

मेखला - "नहीं री, सखी। कल बापू जब राजमहल से लौटकर अाये तो उन्होंने बताया कि बन्धुमती का मृतक शरीर सीमा पार पड़ा मिला है। लेकिन बदमाशों का कोई पता नहीं चला. .....ओह.....अर्जुनमाली यह सब कैसे सहन कर पायेगा।"

सौदा. - "ओह, यह तो बड़ा बुरा हुआ। मेरी तो आंखें नम हो आयी हैं। मैं यह सब नहीं देख पाऊंगी। मेरा दिल थर्रा रहा है। अर्जुनमाली तो कभी भी सहन नहीं कर पायेगा।"

मेखला - "हां। मैंने कल ही उसे देखा था। कितना टूटा हुआ लगता था। एक पल को तो मैं उसे देखकर डर गयी थी। बिखरे-बिखरे बाल, फटे कपड़े, बड़ा वीभत्स था उसका रूप।"

सौदा० - "यह तो बड़ा अनिष्ट हो गया। अर्जुनमाली को बड़ा गहरा आघात लगा होगा। उसे इस स्थिति में न देख सकूंगी। बचपन से वे लोग साथ-साथ खेले थे। हमेशा एक दूसरे की सहायता करते थे। कितना प्रेम था उन दोनों में। भाग्य ने उसके साथ यह कैसा घिनौना खेल खेला है?"

मेखला - "सखी, इसमें उन दोनों का कोई दोष नहीं था। उन बदमाशों से उनकी कोई शत्रुता भी तो नहीं थी?"

सौदा० -"तो फिर क्यों किया उन बदमाशों ने उन लोगों के साथ ऐसा अत्याचार?"

मेखला - "मैं स्वयं ही इस असमंजस में हूं कि ऐसा क्यों हुआ?"

सौदा० - (कुछ सोचकर) "मैं समझ गयी, सखी।"

मेखला - "क्या?"

सौदा० -"बन्धुमती का रूप ही उनके आकर्षण का कारण बना होगा।"

मेखला - "क्या?"

सौदा० - "हां, हंसती थी तो जैसे पुष्प खिलते थे और पुष्प चुनने का कितना शौक था उसे। पिछले वर्ष यक्ष मन्दिर को पुष्पों से कितना सुन्दर सजाया था उसने। उसके हाथों में जादू था और पैरों में अनुपम थिरकन। अब राजगृह के निवासी उसके नूपुरों की छनछनाहट कभी भी न सुन पायेंगे।"

मेखला -"हां, सौदामिनी। कल कुछ लोग संध्या को आपस में बातें कर रहे थे कि अर्जुनमाली बन्धुमती की विरह वेदना में विक्षिप्त हो गया है। वह कुछ भी कर सकता है।"

सौदा० - "क्या तात्पर्य है तेरे कहने का?"

मेखला - "यही कि वह किसी के भी प्राण हरण कर सकता है।"

सौदा० - "ओह, कितना दिन चढ़ आया। तूने तो बातों में ऐसा उलझा दिया कि समय का ध्यान ही नहीं रहा।"

(नेपथ्य से किसी अनजान व्यक्ति की आवाज)

"भागो, कोई आ रहा है। उसके कपड़े फटे हैं। उसने अपने हाथ में सौ फलकों का मुगदर उठा रखा है। वह लोगों की हत्या करने को तत्पर है। भागो, जल्दी भागो, वह इधर ही आ रहा हैं।

(हड़बड़ा कर भागने में सखियों के हाथ से गगरी छूटकर गिर जाती है। वे भागती हुई कहती हैं)

मेखला - "चलो सखी, भागो।"

सौदा० - "किन्तु इतनी जल्दी घर पहुंचना कठिन है।"

मेखला - "चल, सामने वाले घर में शरण ले लेते हैं। जब वह चला जायेगा, तब घर चलेंगे।"

सौदा० - "मुझे लगता है कि कहीं वह अर्जुनमाली तो नहीं है?"

मेखला - "हो सकता है, चल, जल्दी से मेरा हाथ पकड़।"

(दृश्य समाप्त)

- क्रमशः ...

- अजिताश्रम, गणेशगंज, लखनऊ

समाधान मांगते प्रश्न

(प्रश्न श्री जमनालाल जैन (सारनाथ) के तथा समाधान जस्टिस एम.एल. जैन २१५, मन्दाकिनी एनक्लेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली - ११००१९ के - पिछले अंक (शोधादर्श-४५) के क्रम में)

प्रश्न. ७ - भारत के धर्मों या अध्यात्मवाद का संदेश रहा है कि मनुष्य अपनी आवश्यकताएं सीमित करे- कम करे। संसार असार है, कोई किसी का नहीं है, अकेले ही आना जाना है। मुक्ति या मोक्ष के लिए अकिंचन या अपरिग्रही बनना ही होगा। क्या ऐसी विचारधारा ने या तत्त्वज्ञान ने मनुष्य के जीवन-व्यवहार को संकीर्ण, स्वार्थपरक, भीरू, पराक्रमशून्य, समृद्धि से वंचित या राष्ट्रसेवा से विमुख नहीं बना दिया है? क्या ऐसा अतिवादी नियतिवाद आदि ही भारत की गुलामी का कारण नहीं है ? हजार-डेढ़ हजार वर्षों तक की पराधीनता के मूल में क्या जातिवाद, ब्राह्मणवाद, वर्ण व्यवस्था, धर्मोन्माद या पारम्परिक सत्ता-संघर्ष ही नहीं रहा?

उ. ७ - यह सही है कि भारत की पराधीनता में जातिवाद, ब्राह्मणवाद, वर्णवाद, धर्मोन्माद, पारस्परिक संघर्ष और अतिवाद का बहुत योगदान है, परन्तु यह समझना भूल रहेगी कि अध्यात्मवाद और कर्तव्यवाद दो मुखालिफ सोच हैं। भगवद् गीता में इनका समन्वय संभव होना दिखाया है। कई जैन अपरिग्रही वीतरागी साधुओं ने अपने शिष्यों को शूरवीरता दिखाने का आह्वान किया है। यदि विष्णु कुमार मुनि की घटना सही मानें तो फिर अध्यात्मवाद व समाज रक्षा में विरोध नहीं रहता। अध्यात्म साधना स्वयं एक पराक्रम है, वह भला पराक्रम का विरोध कैसे करेगी? व्रतों की, गुण स्थानों की व्यवस्था इस धारणा का सीधा सादा खण्डन है।

कुछ तीर्थंकर चक्रवर्ती सम्राट थे। हिन्दू पुराण संस्कृति को सही मानें तो कई अध्यात्म साधक ऋषि क्षत्रियता व रण कौशल का पाठ पढ़ाते रहे हैं। कारण वही कि अध्यात्म व्यक्तिगत है कोई सामाजिक या प्रदेशीय समाज दर्शन नहीं है। सीमित आवश्यकताएं भी व्यक्तिगत जीवन का आदर्श हैं- किसी फौज या साम्राज्य का, समष्टि का आदर्श नहीं हैं- मैं तो यह भी संभव मानता हूँ कि सीमित परिग्रह वाला व्यक्ति किसी बंधन से बंधे न होने के कारण अधिक पराक्रम दिखा सकता है। इसी तरह नियतिवाद, भीरूता या कायरता का प्रमाण या पर्याय नहीं है-नियतिवाद तो दरअसल परिणामों के कारणों की छानबीन में से एक बिन्दु है। पृथ्वीराज चौहान कोई नियतिवादी नहीं था। पराक्रम में भी कम नहीं था। फिर भी उसकी हार को नियति कहें तो क्या कहें परमात्मा की सत्ता स्वीकार कर लें तो यह सही लगेगा कि 'जाको प्रभु दारुण दुख देईं, ताकी मति पहले ही हर लेईं', जिनसेन ने इस लिए कर्मों को ही ईश्वर कहा है।

प्र. ८ – 'न धर्मोधार्मिकैर्विना' तथा 'यतोधर्मस्ततोजयः' बहुत सुन्दर उक्तियां हैं। पर प्रश्न यह है कि धार्मिक कौन है, उसकी पहचान क्या है कि जिसके जीवन में-सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक जीवन में, सर्वतोमुखी धर्म का दर्शन हो।

प्र. ९. – धर्म या अध्यात्म का विधान संसार को सुखी-सम्पन्न, स्वच्छ, पवित्र बनाने के लिए माना जाए या यह केवल व्यवहार से पलायन करके अनजाने मुक्तिपथ की ओर प्रस्थान करने के लिए है ?

उ. ८, ९ – धर्म अनेकार्थी शब्द है फिर भी धर्म व अध्यात्म का उद्देश्य संसार को याने सारे प्राणियों को व्यक्तिगत रूप से संतुष्ट, सुखी, सम्पन्न व पवित्र बनाना है-पलायनवाद नहीं है यह। पलायन वाद है कर्त्तव्य पराङ्मुखता। हां कई बार जब पलायन करने वाले, कर्तव्यों से भागने वाले साधुओं की संख्या अधिक हो तो साधु संस्था को पलायनवादी माना जा सकता है- न बाहुबलि का पलायनवाद था न भरत का सन्यास। अपने अनतिदूर कर्त्तव्यों से मुकाबले में असमर्थ होकर साधु होना पलायनवाद है।

'न धर्मो धार्मिकैर्विना'- सही उक्ति है तब जब हम धर्म को व्यक्ति से निकालकर एक संगठित धर्म बना लें यथा- इस्लाम, जैन, सिख, ईसाई, हिन्दू आदि। ये संगठन धर्म नहीं हैं धर्मों के अखाड़े बन गए हैं। खास धर्म को मानने वालों के संगठन हैं- यदि संगठन खत्म हो जाएं तो खतरा यह है कि उन की अनन्यता **(Identity)** खत्म हो जाए। 'यतो धर्मस्ततो जयः' एक व्यक्तिगत या समष्टिगत युद्ध का नारा है जैसा वन्देमातरम्। यदि विश्वास न हो कि उसकी लड़ाई सच्चाई की लड़ाई है और यदि वह विजय का विश्वास न रखे तो फिर विजय उस शख्स के लिए एक स्वप्न है।

प्र. १० – 'जीओ और जीने दो' वचन में या घोष में क्या यह अन्तर्निहित नहीं है कि मनुष्य का किसी के प्रति कोई दायित्व नहीं है ? क्या इस घोष को 'जिलाकर जिओ' में परिवर्तित कर व्यवहार में 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' की भावना को साकार नहीं किया जा सकता? इसमें दायित्व है।

उ. १० – 'परस्परोपग्रहो जीवानाम्' सूत्र बेचारा शिकार है वे समझ पण्डितों का। इस सूत्र से आगे उपग्रह का उपकार अर्थ कर देने से एक भ्रांति हो गई है क्योंकि उपकार का अर्थ अमूमन हित साधन होता है-वह इस सूत्र का मकसद नहीं है- मनुष्य मनुष्य का, विशेषतः नारी का, ही दुश्मन नहीं, सारे पंचास्तिकाय का दुश्मन है। मोटा उदाहरण लें तो भला क्या सिंह हिरण का हितकारी है? कृमि खाने वाली मछली व उसके शिकारी में कौन किसका उपकार या हित कर रहा है? मेरे ख्याल से बात समझ में आ जाएगी; न आए तो अनेकान्त, वर्ष ४९, अप्रैल-जून ९६, पृ. २४-२८ में मेरा लेख इसी सूत्र पर पढ़ने का कष्ट करें। 'जीओ और जीने दो' किसी शास्त्र का नारा नहीं है- **Live and Let Live** का अनुवाद है इसका अर्थ है कि अपने जीवन के साथ-साथ दूसरे जीवों को भी जीने दो। सह अस्तित्व व शांति का मंत्र है यह। इसका अर्थ यह कतई किसी भी प्रकार नहीं कि मनुष्य का कोई दायित्व नहीं है, बल्कि जीने दो में

अहिंसा का दायित्व साफ है; छिपा हुआ भी नहीं है। जीने दो में अन्य प्राणियों के प्रति दायित्व है, इसके बिना सह अस्तित्व नहीं बनता। 'जिलाकर जीओ' यह नारा अहिंसा का नारा नहीं है, करुणा का नारा है। यह अहिंसा का प्रकारान्तर से अर्थ होता है। यह जान लेना चाहिए कि अहिंसा का अर्थ है- 'प्राण व्यपरोपण' याने हिंसा न करना है, न कि करुणा करना। करुणा में राग होता है। अहिंसा धर्म है मगर वीतराग। जिला कर जीओ में व जीने दो व जीओ में अधिक अन्तर नहीं है। इसका अर्थ आत्म रक्षा के साथ-साथ अन्य के आत्म रक्षा के अधिकार का समन्वय है।

प्र. ११ - सज्जातीयता या रक्तशुद्धि का तात्पर्य क्या है ? सहस्राधिक वर्षों की पराधीनता, दास-दासी प्रथा, लूट-पाट, युद्धों आदि के कारण अनेक जातियां बनी-बिगड़ी नष्ट हो गईं। मुस्लिम आक्रमक हजारों स्त्री पुरुषों को दास बनाकर अपने देशों को ले गए और बाजार में साग सब्जी की तरह बेच दिया। भारत में भी छोटी छोटी रयासतों के युद्धों में हजारों योद्धा यमलोक पहुंच गए। ऐसी स्थिति में जाति और रक्त की शुद्धि की कसौटी क्या है ? रक्त के तो ग्रुप (श्रेणियां) होते हैं, जो अब अस्पतालों में रोगियों को दिया जाता है। ऐसे हजारों संबंधों से भी विश्व में महान विचारक, शोधकर्ता, कलाकार हुए ही हैं।

उ. ११ - विजातीय संबंध का क्या, मैं तो अन्तरर्देशीय, अन्तर्वर्णीय व अन्तर्धर्मी संबंधों का पक्षपाती हूं। रक्तशुद्धि और सज्जातीयता बेमतलब की संकीर्णता है- यह मनु की वर्ण संकरता का निम्नतम संस्मरण हैं

मुस्लिम आक्रमक स्त्रियों को पुरुषों को दास बनाकर ले गए व बाजारों में बेच दिया साग मूली की तरह। इस कथन में कुछ दोष है।

(१) सागमूली को बेचना मानो कोई आपत्ति की बात नहीं, यह भी अहिंसा के प्रतिकूल आचरण है। इसमें संयम का नाम है व्रत, अणुव्रत।

(२) मुस्लिमों के इलावा किसी ने ऐसा नहीं किया यह गलत धारणा है क्योंकि-

(क) स्त्री के दासत्व और अपहरण के अनेक उदाहरण भारत के इतिहास में भरे पड़े हैं।

(ख) दासत्व का इतिहास तो वेदों से ही शुरू होता है। दास प्रथा पर किसी का एकाधिकार नहीं है। दास प्रथा को खत्म करने के लिए अमीरीका में विरोध हुआ था।

(३) यदि गुलामी न होती तो दास्य भक्ति क्यों सर्वोपरि होती?

(४) अभी अभी तक महाराष्ट्र में और हिमाचल में लड़कियां नीलाम होती रही हैं।

(५) जब मराठों ने राजस्थान पर आक्रमण किया तो पराजित लोगों की स्त्रियों को मराठों ने सरे आम एक एक चवन्नी में नीलाम किया था। आपने रामायण पढ़ी ही होगी और पता भी होगा कि राम दहेज के रूप में कितनी दास दासियां लेकर विदेह से आए थे। चन्दना का दासत्व तो आप खैर जानते ही है। उसके दास्य का अंत समाज में पुनर्स्थान में न होकर साधुत्व में हुआ। महावीर के मिशन में मुझे यह कमी खटकती है।

रक्त का ग्रुप तो रक्तदूषण, रक्तसंकरण के सिद्धान्त का समर्थन ही करता है।

रक्त विभिन्नता व क्छ। की विभिन्नता का व्यक्तिगत संबंधें में महत्व रहता है मगर जाति शुद्धता का नहीं। अन्तर्जातीय ;ममसंजलद्ध संबंधों का विरोध करने वाले लोग अपनी उपजाति की अनन्यता के विरोधी हैं ये समाज द्रोही लोग।

प्र. १२ - जैन धर्म तो विश्व धर्म की घोषणा करता है। प्राणी मात्र के कल्याण का उसका विरुद्ध है। तब अर्न्जातीय विवाह का निषेध किस आधार पर किया जाता है?

उ. १२ - कोई आधार नहीं। केवल परम्परा व हठ धर्मिता है यह।

प्र.१३ - इसी तरह जो युवतियां या महिलाएं किसी कारणवश विधवा हो जाती हैं, वे उनके शांतिपूर्ण जीवन की व्यवस्था के लिए यदि वे विवाह की इच्छुक हैं तो उन पर प्रतिबंध क्यों? क्या धर्म सभी स्वातंत्र्य का विरोधी है ?

उ.१३ - जैन धर्म अन्य धर्मों की मानिंद सदा से वनिता विरोधी रहा है। आप जानते ही हैं कि नारी को कैसी कैसी गालियां लिखी हैं हमारे पूज्य (?) शास्त्रों में। नारी विष वेल है ऐसी पूजाएं भी हैं इस बात पर!! विधवा विवाह का निषेध हिन्दू धर्म का प्रभाव है- खैर शुक्र है कि यह निषेध अब भंग होता जा रहा है। एक परम्परा के अनुसार ऋषभदेव की एक या दोनों पत्नियां विधवाएं थीं।

प्र.१४ - क्या यह सच नहीं है कि भारत के तथाकथित उच्च वर्ग में, उद्योगप्रधान या व्यापारी वर्ग में चारित्र्य का मुख्य आधार केवल यौनाचार रह गया है। पति पत्नी के संबंध में अतिरिक्त सब प्रकार का स्त्री पुरुष संबंध चारित्र्यभ्रष्टता माना गया है। उसी पर उंगली उठाई जाती है। इसके विपरीत शोषण, भ्रष्टाचार, करचोरी, गबन, संग्रहखोरी, असत्याचरण, कषाय, कोर्ट-कचहरी, मारपीट, दहेज अप्रामाणिकता आदि को देखकर भी आंख बंद कर दी जाती है और उसका वही सम्मान बना रहता है। संख्याओं, धर्मायतनों, मठों आदि में यही स्थिति है। इसका मूल कारण क्या है?

विदेश में किसी सार्वजनिक पार्क आदि में, पिकनिक स्पोट पर युवा प्रेमी-प्रेमिका की प्रेमलीला देखकर एक भारतीय ने पूछा कि आप लोग खुले में इस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार कैसे करते हैं, हमारे यां तो यह पाप है। उस युवक ने मजेदार उत्तर दिया कि प्रेम क्या छिपाने की चीज है? छिपाने की चीज तो पाप है। पाप ही छिपाकर किया जाता है।

उ. १४ - विवाह कोई नैसर्गिक संस्था नहीं है। यह मनुष्य समाज ने अपने को क्षरण से बचाने के लिए एक विधान बनाया है- इसमें स्त्री को सम्पदा में शामिल करने की धारणा भी है। यह हमारी मूर्खताव कमजोरी है कि यौन स्खलन को ही अनाचार मानते हैं जबकि सारे समाज व देश को बिगाड़ने वाले अनाचारों के खिलाफ धर्माचरण नारा नहीं लगता।

प्रेम लीला के वर्णन आपने पुराणों में पढ़े होंगे- श्रृंगार रस काव्य का एक अंग है हमारे पुराण इससे भरे पड़े हैं। यदि पाप है तो चाहे छुपकर करो या चौड़े कोई फरक नहीं पड़ता। निष्पाप निज नांर गमन भी तो छिपकर ही होता है। प्रेम लीला में कोई पाप नहीं परन्तु इसका

प्रदर्शन कर समाज की व्यवस्था को भंग करने नहीं दिया जा सकता वर्ना इसकी कोई सीमा न होगी और प्रेम वंचित लोग इन लीलाओं में उपद्रव भी तो मचा सकते हैं। यह हूं - वतकमत का मामला है। भगवान महावीर के गर्भ कल्याणक से दो बातें झलकती हैं अपने अवधि ज्ञान से इन्द्र ने पहले ही जान लिया था कि अमुक दिन सिद्धार्थ दम्पति की रति क्रिया अवश्य होगी और जब उसने जाना कि ऐसा हो गया है तो आकर उनका अभिषेक किया- इन्द्र का यह कार्य किस श्रेणी में आता है? हां, अलबत्ता सोमदेव ने उपासकाध्ययन (?) में वेश्या गमन को परस्त्री त्याग व्रत का अतिचार नहीं माना है। चूंकि पाप की अवधारणा देश व काल पर आश्रित है इसलिए कोई काम पाप है या नहीं यह कहना तो सरल है पर पाप की परिभाषा करना कठिन है। जिस भाव व कार्य से कर्मों की अशुभ प्रकृतियों का आस्रव हो वह पाप हैं। मोटे तौर पर व्रतों के अतिचार को पाप कह सकते हैं। अतः गबन भ्रष्टाचार पाप की श्रेणी में आते हैं। पर किसी पाप की निंदा करना, किसी की न करना यह समाज की प्राथमिकताओं पर मुनहसिर है कि किससे समाज को फौरीं नुकसान पहुंचता है।

प्र. १५ - प्रथमानुयोग की कथाएं भी तो स्त्री-पुरुषों के अवैध संबेधों, युद्धों, अपहरणों, रखैलों के प्रसंगों से भरी पड़ी हैं। काम एक प्राकृतिक ऊर्जा है, पुरुषार्थ है। समय आने पर वह अपना प्रभाव दिखाता ही है, फिर चाहे कोई महान साधु हो, महात्मा हो! यह काम को दबाने या रोकने या उससे दूर रहने का ही परिणाम है कि आये दिन चौकानें वाली घटनाएं सुनने पढ़ने में आती हैं। विदेशों की अपेक्षा हमारे यहां का प्रतिबंध अधिक ही कामोत्तेजक प्रतीत होता हे।

उ. १५ - सही है आपका ख्याल परन्तु जो काम पर, इस उर्जा पर काबू नहीं पा सकते उन्हें साधु, वह भी जैन साधु बनने का और आदर पाने का कोई हक नहीं है-सामाजिक व्यवस्था की घोर हानि कर रहे हैं ऐसे साधु लोग।

प्र. १६- शास्त्रकारों, कवियों, कलाकारों ने कल्पनाएं तो बड़ी बड़ी और भव्य की, जैसे सुमेरु पर्वत, क्षीर सागर, स्वर्ग, नरक नवजात तीर्थंकर शिशु का भारी भरकम अभिषेक पर सुमेरु पर्वत पर चढ़ने या बालकों को दूध पिलाने का साहस किसी ने नहीं किया। कल्पना को कृति में उतारना सरल नहीं होता।

उ. १६ - जन्माभिषेक आदि ये सब तो तीर्थंकरों के लिए है। तीर्थंकर बालक का स्नानक्षीर सागर के जल याने दूध से होता है- यह दक्षिण प्रान्त से आए जैन बने ब्राह्मण विद्वानों की देन है। पंचामृत अभिषेक को प्रामाणिक बनाने के लिए तीर्थंकर शिशु का और अवसरों पर भी अभिषेक (जल से ही सही) का होना आवश्यक माना गया है। साधारण बालक का इस यातना को सहने का सामर्थ्य नहीं है। दरअसल तीर्थंकर माता का या पशु का कोई दूध नहीं

पीते उनके तो अंगूठें में इन्द्र अमृत भर देता हे जिसे वे चूसते रते हैं और भोजन वसन सब देवों द्वारा समर्पित किया जाता है। उनको अपौरुषेय दिखाने के लिए यह सब लिखा गया है।

यह सब कल्पना है यह सही है वर्ना कोई तो बताए कि कहां है सुमेरु पर्वत और कहाँ है क्षीर सागर। परन्तु वैभव, काव्य, मिथिक रहस्य इनका उपयोग सब धर्मों में सर्वत्र होता है साधारण जन का मनोरंजन के जरिये धर्म में दृढ़ता बनाए रखने के खातिर। जैन पुराणों में तो एक खूबी यह है कि ऐसे प्रयोगों से उनने जहां मौका मिला वहां धर्म के उसूलों का खूब प्रतिपादन भी किया है- यद्यपि इससे काव्य में धर्म के उसूलों के प्रचार-ज्ञान की लम्बी तकरीरों के कारण काव्य कला की कहीं कहीं हानि भी हुई है। शुद्ध काव्य नहीं रह पाए हैं पुराण।

(शोधादर्श-४५' में प्रकाशित 'समाधान मांगते प्रश्न' के सन्दर्भ में श्री आदित्य जैन, लखनऊ ने प्रश्न १ से ४ के सम्बन्ध में अपने समाधान प्रेषित किये हैं जो निम्नवत प्रस्तुत हैं- सम्पादक।

प्र. १ - यह मानना कि 'चिकित्सा तथा शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति के कारण आयु भी बढ़ने लगी है', ठीक नहीं है। वस्तुतः मनुष्य के जीवन के लिये भोजन, पानी, श्वसन आदि सभी आवश्यक हैं। इनके किसी के निरोध होने पर जीवन की समाप्ति की स्थिति आ सकती है, परन्तु वस्तुतः यह सभी स्थितियां आयु कर्म के लिये निमित्त मात्र होती हैं। इसी प्रकार जीवन की सहायक चिकित्सा आदि भी उस आत्मा के आयु कर्म के लिये निमित्त मात्र ही है। जिस पौद्गलिक अवस्था में जितना आयु कर्म होता है वह विभिन्न निमित्तों से प्राप्त होता है।

प्र. २ - गोत्र कर्म को केवल मानव के संदर्भ में नहीं देखना चाहिये। इसे भी सभी योनियों पर लागू मानना चाहिये। इसी संदर्भ में इसको समझने का प्रयास करना चाहिये कि गोत्र का वास्तविक आशय क्या ह।

प्र. ३ - आत्मा का आर्य तथा म्लेच्छ आदि कोई भेद नहीं हो सकता। पाप और पुण्य को भौतिक सुख-सुविधाओं के संदर्भ में वर्गीकृत करना उचित नहीं है। आत्मा के लिये पुण्य व पाप दोनों ही हेय हैं। पुण्य उस सीढ़ी के समान है जिसे आत्मा के विकास के बाद छोड़ देना है। भौतिक सुखोपभोग आत्मा के विकास के लिये नहीं है अतः पुण्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्र. ४ - यह प्रश्न भी प्रश्न ३ के समान ही है। हमको यह जानना होगा कि क्या भौतिक सम्पन्नता ही आत्मा के विकास का मापदण्ड है। हम जाने-अनजाने बार-बार आत्मा के विकास को भौतिक सम्पन्नता आदि से जोड़ने आदि का प्रयास करते हैं, जो ठीक नहीं है। यह भी हमें देखना होगा कि हमारा आत्मिक व्यवहार हमारे भौतिक व्यवहार के अनुरूप है अथवा उसके विरुद्ध। वास्तव में हमारे मन, वचन, कर्म में एकरूपता नहीं है।

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार

कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ (५८४ महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज) इन्दौर-४५२००१ द्वारा संचालित निम्नलिखित पुरस्कारों के लिए **३० जून, २००२** तक प्रविष्टियां आमंत्रित की गई हैं --

(१) कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ पुरस्कार- राशि रु. २५,०००/- जैन विद्याओं से संबद्ध किसी भी विषय पर लिखित मौलिक/प्रकाशित/अप्रकाशित एकल कृति पर वर्ष २००२ का पुरस्कार।

(२) ज्ञानोदय इतिहास पुरस्कार- राशि रु. ११,०००/- विगत पांच वर्षों में जैन इतिहास के क्षेत्र में मौलिक शोध कार्य हेतु।

नियमावली एवं प्रस्ताव पत्र हेतु ज्ञानपीठ के मानद सचिव से सम्पर्क किया जाय।

भगवान महावीर फाउंडेशन पुरस्कार

इसी प्रकार भगवान महावीर फाउंडेशन, चेन्नई ने सरल-सरस भाषा और सुबोध शैली में **जैन धर्म एवं दर्शन** का हार्द (मर्म) अभिव्यक्त करने वाली तथा उसे आधुनिक ढंग से प्रतिपादित करने वाली अधिकतम २५० पृष्ठों की पुस्तक की पाण्डुलिपि छह प्रतियों में हिन्दी और अंग्रेजी भाषा में ३० नवम्बर, २००२ तक आमंत्रित की है। हिन्दी और अंग्रेजी में प्राप्त पुस्तकों में से चयनित एक-एक सर्वोत्तम पुस्तक पर फाउण्डेशन ने पृथक्-पृथक् एक-एक लाख रुपये का पुरस्कार तथा पुरस्कार प्राप्तकर्ताओं को प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति-चिन्ह प्रदान करने की घोषणा की है। पुरस्कार नियमावली आदि हेतु उक्त फाउण्डेशन के संयोजक से पोस्ट बाक्स नं. २६८३, ११, पोन्नप्पा लेन, ट्रिप्लिकेन हाई रोड, चेन्नई- ६००००५ सम्पर्क किया जाय।

आयओ बहिया पास - आचाराङ्ग १ -३३

(अपने ही समान दूसरों को देखो।)

असंगहिय परिजण संगहिता भवति - दश श्रुत. ४

(जिसका कोई नहीं है उसका खुद बनकर उसे धैर्य दें, संभालें और उसकी यथोचित सेवा करें)

जन्म जयन्ती इतिहास-मनीषी की

६ फरवरी को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में **शोधादर्श** के आद्य सम्पादक इतिहास-मनीषी, स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन विद्यावारिधि की ९०वीं जन्म जयन्ती पर 'इतिहास लेखन में क्या दृष्टि अपनायी जाये' विषय पर चर्चा गोष्ठी हुई। गोष्ठी की अध्यक्षता 'शोधादर्श' के प्रधान सम्पादक श्री अजित प्रसाद जैन ने की और मुख्य अतिथि कोलकाता से पधारे वयोवृद्ध सुचिन्तक श्री कैलाशचंद्र जैन थे। संचालन श्री रमाकान्त जैन ने किया। वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति एवं श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण और दीप प्रज्वलन तथा डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' एवं 'जय महावीर नमो' के समवेत गायन से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। अपने प्रास्ताविक उद्‌बोधन में डॉ. शशिकांत ने सभी समागतों का स्वागत करते हुए आयोजन की प्रासंगिकता तथा डाक्टर साहब द्वारा भारतीय इतिहास के क्षेत्र में किये गये अवदान पर प्रकाश डाला। श्री रमाकान्त ने डाक्टर साहब के लेख 'इतिहास की उपयोगिता' का वाचन किया। तदनन्तर डॉ. विजय कुमार जैन, डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी, डॉ. लक्ष्मी निवास पाण्डेय, श्री आदित्य जैन, डॉ. ओम प्रकाश त्रिवेदी, श्री नरेशचंद्र जैन, श्री राजीव कांत, पं. विष्णुदत्त शर्मा, श्री कैलाशचंद्र जैन और श्री अजित प्रसाद जैन ने प्रस्तुत विषय पर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये। चर्चा में यह बात उभर कर आई कि इतिहास और पुराण में अन्तर है तथा इतिहास लेखन में हमारी दृष्टि तथ्यपरक व निष्पक्ष होनी चाहिये और वह परिस्थितियों के सापेक्ष, दुराग्रह और पूर्वाग्रह से मुक्त रहे।

इस अवसर पर डॉ. महावीर प्रसाद जैन 'प्रशान्त' और श्री रोहित कुमार जैन ने डाक्टर साहब को अपनी काव्यांजलि अर्पित की। डॉ. विनय कुमार जैन और श्री कैलाशचंद्र जैन ने डाक्टर साहब सम्बंधी अपने संस्मरण सुनाये। श्री लूणकरण नाहर और डॉ. राका जैन ने अपने भजनों तथा श्री अनिल 'बांके' ने अपनी हास्य क्षणिकाओं द्वारा गोष्ठी को रससिक्त किया।

- अंशु जैन 'अमर'
ज्योति निकुंज, लखनऊ

समाचार विविधा

वर्द्धमान महावीर मेडिकल कालेज का उद्घाटन -

१७ दिसम्बर, २००१ को सफदरजंग अस्पताल, दिल्ली, के अंतर्गत प्रस्तावित मेडिकल कालेज का **वर्द्धमान महावीर मेडिकल कालेज** के रूप में उद्घाटन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा किया गया।

भगवान महावीर पार्क -

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में गोमती तट पर बुद्धा पार्क के पार्श्ववर्ती हाथी पार्क में २४वें तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर की मकराना (राजस्थान) में निर्मित ११ फुट ऊंची लाल पाषाण की पद्मासनस्थ भव्य मूर्ति १५ फुट ऊंचे चबूतरे पर स्थापित किये जाने हेतु लाई गई है। लखनऊ विकास प्राधिकरण ने हाथी पार्क का नाम अब **भगवान महावीर पार्क** कर दिया है।

रीवा विश्वविद्यालय द्वारा 'शोधादर्श' को मान्यता -

रीवा विश्वविद्यालय ने विज्ञप्ति क्रमांक प्रा.स./अ.म./२००१/१००५, दिनांक २१.१२.२००१ द्वारा जैन समाज की निम्नलिखित बहुचर्चित एवं सर्वोपयोगी ४ पत्रिकाओं को शोध पत्रिका की मान्यता प्रदान की है-- **शोधादर्श**-लखनऊ; **प्राकृत विद्या** कुन्दकुन्द भारती, दिल्ली; **अर्हत् वचन,** इंदौर तथा **वीतराग वाणी,** टीकमगढ़।

वर्द्धमान महावीर विश्वविद्यालय, कोटा -

राजस्थान सरकार ने कोटा खुला विश्वविद्यालय का नाम अब **वर्द्धमान महावीर विश्वविद्यालय, कोटा** कर दिया है।

एक और जैन डाक टिकट -

भारत सरकार के डाक-तार विभाग ने १८ नवम्बर, २००१ को सुप्रसिद्ध फिल्म निदेशक, दादा साहब फालके एवार्ड सम्मान से अलंकृत, जैन समाजरत्न, पद्मभूषण स्व. **व्ही. शान्ताराम** की स्मृति में एक डाक टिकट जारी किया है।

वर्णी जी की मूर्ति का अनावरण -

७ दिसम्बर, २००१ को श्री कुन्दकुन्द जैन महाविद्यालय, खतौली के परिसर में नवनिर्मित वर्णी-वाटिका में जैन जगत के गांधी नाम से विख्यात पूज्य गणेश प्रसाद वर्णी जी की अष्टधातु से निर्मित ३-५ फुट ऊंची पद्मासनस्थ मूर्ति का अनावरण केन्द्रीय कपड़ा राज्यमंत्री श्री वी. धनंजय जैन द्वारा सराकोद्धारक उपाध्याय ज्ञानसागर महाराज और मुनि श्री

वैराग्यसागर महाराज के सान्निध्य में धूमधाम से सम्पन्न हुआ। समारोह की अध्यक्षता साहू रमेशचंद जैन ने की।

उपाध्याय ज्ञानसागर जी ने अपने उद्‌बोधन में कहा कि वर्णी जी का जीवन शिक्षा के क्षेत्र तक सीमित न रहकर करुणा, दया व वात्सल्य की अविरल धारा था।

इस अवसर पर 'वर्णी स्मारिका' और डॉ. ज्योति जैन द्वारा लिखित 'वर्णी जी की राष्ट्रीयता' फोल्डर का विमोचन भी हुआ।

इंदौर में अहिंसा विश्वविद्यालय -

मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश ने जैन समाज के प्रतिनिधिमण्डल के प्रस्ताव पर इंदौर में अहिंसा विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु राज्य सरकार द्वारा भूमि उपलब्ध कराने की घोषणा की।

प्रवर्तक श्री ने उपाधि अस्वीकार की -

२५ नवम्बर, २००१ को बामनिया में सम्पन्न अ.भा. श्री धर्मदास स्थानकवासी जैन युवा संगठन के अधिवेशन में जब प्रवर्तक श्री उमेश मुनि म.सा. 'अणु' को **शासन सम्राट** की उपाधि प्रदान की गई तो उन्होंने उसे यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि यह उपाधि तो सिर्फ तीर्थंकर भगवान के लिये होती है और वह ही इसके योग्य हैं।

'अहिंसा' शीर्षक श्रेष्ठ पुस्तक पर ५१००० रुपयों के पुरस्कार की घोषणा -

श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति ने भगवान महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में भगवान महावीर के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा' शीर्षक श्रेष्ठ पुस्तक पर ५१,००० रुपये पुरस्कार स्वरूप प्रदान करने का निर्णय लिया है।

पुरस्कार प्राप्तकर्ता को प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति चिह्न भी प्रदान किये जायेंगे।

इस पुस्तक को लिखवाने का मुख्य उद्‌देश्य है कि एक ही पुस्तक द्वारा भगवान महावीर के मूल सिद्धान्तों का मर्म अभिव्यक्त हो जो आधुनिक ढंग से प्रतिपादित किया जाय।

पुस्तक की भाषा सरल एवं सरस होनी चाहिए तथा पृष्ठ सं. २०० से अधिक नहीं होना चाहिए।

पुस्तक की पांडुलिपि (छः प्रतियां) समिति को ३० अक्टूबर, २००२ तक प्राप्त हो जानी चाहिए।

पुरस्कार की नियमावली आदि के लिए संयोजक- श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, डी-३०२, विवेक विहार, दिल्ली-९५ से सम्पर्क करें।

समाचार विमर्श

- श्री अजित प्रसाद जैन

१०० करोड़ का आबंटन -

भ. महावीर के २६००वें जन्म महोत्सव के अवसर पर भारत सरकार ने जैन धर्म के विभिन्न कार्यक्रमों के लिए १०० करोड़ रु. के प्राविधान की घोषणा की थी। इन रुपयों को कहां लगाया जाय इस हेतु सरकार ने एक कार्यान्वयन समिति (Implementation Committe) का गठन किया था जिसके एक महत्वपूर्ण सदस्य महासमिति अध्यक्ष श्री प्रदीप कुमार कासलीवाल हैं। उनके अथक प्रयासों से करोड़ों रुपए के प्रोजेक्ट दि. जैन समाज को स्वीकृत हो सके। उक्त कमेटी ने इस राशि को निम्न कार्यों के लिए आवंटित करने का निर्णय लिया है :-

१. ५ करोड़ - भ. महावीर वन स्थली, नई दिल्ली।
२. १० करोड़ - जैन एवं प्राकृत विद्याओं के अध्ययन के लिए।
३. ३ करोड़ - जैन शास्त्रों की सूची (National Register) तैयार करने के लिए।
४. १० करोड़ - गोशाला एवं पशु चिकित्सालयों के लिए।
५. २० करोड़ - जैन स्मारक एवं तीर्थों के जीर्णोद्धार के लिए।
६. ३ करोड़ - जैन म्यूजियम के निर्माण के लिए।
७. १ करोड़ - मौजूदा जैन म्यूजियमों के संवर्द्धन हेतु।
८. ७.५ करोड़ - वैशाली एवं पावापुरी के विकास के लिए।
९. २ करोड़ - भ. महावीर वनस्थली, हैदराबाद।
१०. ३ करोड़ - प्रचार प्रसार हेतु।
११. ५ करोड़ - फिल्म/ टी. वी.।
१२. १० करोड़ - राज्य सरकार की योजनाओं के लिए।
१३. ४ करोड़ - जैन प्रकाशनों के लिए।
१४. १० करोड़ - जैन ध्यान एवं कल्याण केन्द्रों के लिए।
१५. ०.५ करोड़ - सफदरजंग मेडिकल कालेज, नई दिल्ली में जैन गेस्ट हाउस के निर्माण के लिए।
१६. १० करोड़ - भ. महावीर मेमोरियल, नई दिल्ली।

जो भी सदस्य/ट्रस्ट या व्यक्ति उपरोक्त में से कोई भी कार्य करना चाहे तो उन्हें अपने आवेदन पत्र एवं प्रोजेक्ट रिपोर्ट शीघ्रातिशीघ्र श्री विवेक वाडेकर, डिप्टी सेक्रेटरी, संस्कृति

मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली एवं दि. जैन महासमिति को एक-एक प्रति में भिजवाना चाहिए। महासमिति की यह कोशिश होगी कि आपके प्रोजेक्ट को उचित धनराशि प्रदान करवाने की व्यवस्था करे। **- अशोक बड़जात्या**

मानद प्रधान सम्पादक 'ज्ञानधारा' एवं राष्ट्रीय कार्याध्यक्ष महासमिति

(हमें यह देखकर बड़ा विस्मय और निराशा हुई कि हमारे नेताओं ने प्राचीन जैन स्थलों के पुरावशेषों के उत्खनन के लिए भ. महावीर की सही निर्वाण स्थली पावानगर (जिला-कुशीनगर, उ. प्र.) के विकास के लिए तथा समग्र जैन साहित्य व पत्र-पत्रिकाओं के एक वृहद् राष्ट्रीय संदर्भ पुस्तकालय की स्थापना जैसे महत्वपूर्ण कार्यों के लिए कोई भी राशि आबंटन करना आवश्यक नहीं समझा।

भ. महावीर स्वामी की जन्म स्थली, केवलज्ञान स्थली एवं निर्वाण स्थली के सही निर्धारण के लिए पुरातत्वविदों, ऐतिहासिकों एवं शास्त्रीय विद्वानों की कोई राष्ट्रीय संगोष्ठी भी आयोजित कराना आवश्यक नहीं समझा। इस समय में तीनों स्थलियां विवादों के घेरे में हैं।)

विद्वत् परिषद द्वय के चुनाव -

१. नई दिल्ली- दिनांक १७ नवम्बर, २००१ को श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद (डॉ. राजाराम गुट) के त्रय वार्षिक चुनाव आचार्य श्री विद्यानंद जी के सान्निध्य में तथा कार्याध्यक्ष डॉ. हुकमचंद भारिल्ल की अध्यक्षता में सम्पन्न परिषद की साधारण सभा की बैठक में निम्न प्रकार किए गए -

अध्यक्ष- पं. प्रकाशचंद हितैषी शास्त्री (दिल्ली)
कार्याध्यक्ष- डॉ. हुकमचंद भारिल्ल (जयपुर)
उपाध्यक्ष- डॉ. सुदर्शन लाल जैन (वाराणसी)
महामंत्री- डॉ. सत्यप्रकाश जैन (दिल्ली)
मंत्री- डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल (अमलाई)
संगठन मंत्री- डॉ. उदयचंद जैन (उदयपुर)
प्रचार मंत्री- श्री अखिल बंसल (जयपुर)
कोषाध्यक्ष- पं. अशोक गोयल शास्त्री (दिल्ली)

कार्यकारिणी सदस्य- डॉ. विमल प्रकाश जैन (दिल्ली), डॉ. बी.एल. सेठी, (झुन्झुनू), डॉ. पी. सी. जैन (जयपुर), श्री अनूपचंद जैन एडवोकेट (फिरोजाबाद), श्री श्रेणिक अन्नदाते, (डोंबिवली) डॉ. कमलेश जैन (दिल्ली), पं. शांति कुमार पाटिल (जयपुर), पं. हेमचंद जैन (भोपाल), पं. महेन्द्र कुमार शास्त्री (हस्तिनापुर), पं. कस्तूरचंद जैन (विदिशा) तथा श्री आनन्द प्रकाश जैन (दिल्ली)। इनके अतिरिक्त डॉ. एस.पी. जैन (धारवाड़) तथा श्री सतीश जैन (दिल्ली) का कार्यकारिणी समिति द्वारा सहवरण किया गया।

संरक्षक- स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्ति जी, पं. नाथूलाल जी शास्त्री, डॉ. उदयचंद, ब्र. पं. माणिकचंद जी भिर्सीकर, डॉ. देवेन्द्र कुमार शास्त्री, डॉ. राजाराम, पं. चुन्नीलाल शास्त्री तथा डॉ. त्रिलोकचंद कोठारी।

२. विद्वत् परिषद के दूसरे गुट (डॉ. रमेशचंद गुट) के भी त्रय वार्षिक चुनाव दि. १३ दिसम्बर २००१ को देवबंद (जिला सहारनपुर) में डॉ. रमेशचंद्र जी की अध्यक्षता में सम्पन्न परिषद की साधारण बैठक में निम्न प्रकार किए गए -

अध्यक्ष - डॉ. फूलचंद जैन प्रेमी (वाराणसी)
उपाध्यक्ष - डॉ. शीतलचंद जैन (जयपुर)
मंत्री - डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' (बुरहानपुर)
संयुक्त मंत्री - डॉ. विमला जैन (फिरोजाबाद)
उपमंत्री - डॉ. नेमीचंद जैन (खुरई)
कोषाध्यक्ष - ब्र. पं. अमरचंद जैन (कुंडलपुर)
प्रकाशन मंत्री - डॉ. कमलेश कुमार जैन (वाराणसी)

कार्यकारिणी सदस्य - डॉ. रमेशचंद्र (बिजनौर), डॉ. वृषभ प्रसाद व डॉ. विजय कुमार (लखनऊ), डॉ. सुरेशचंद व डॉ. हुकमचंद (दिल्ली), डॉ. सुपार्श्व कुमार (बड़ौत), डॉ. विजय कुमार (वैशाली), डॉ. प्रेमचंद रांवका व डॉ. सनत कुमार (जयपुर), डॉ. एच.पी. संगवे (सोलापुर), डॉ. शुभचंद (मैसूर), पं. पूर्णचंद 'सुमन' (दुर्ग), पं. लालचंद 'राकेश' (गंजबासौदा)।

संरक्षक- स्वस्ति श्री चारुकीर्ति जी भट्टारक श्रवणबेलगोला, पं. नाथूलाल संहितासूरि, व पं. रतनलाल इंदौर, प्रो. उदयचंद वाराणसी, पं. गुलाबचंद पुष्प, टीकमगढ़, डॉ. नंदलाल, रीवां, डॉ. रतनचंद भोपाल तथा डॉ. भागचंद भास्कर नागपुर।

पूज्य क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी वर्णी जी द्वारा संस्थापित प्रगतिशील दिगम्बर जैन विद्वानों की शीर्ष संस्था 'अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद' के अक्टूबर-नवम्बर १९९८ में हुए चुनावों की निष्पक्षता पर मतभेद हो जाने के कारण विद्वत् परिषद दो गुटों में विभाजित हो गई। (इन चुनावों में डॉ. राजाराम ७२ मतों के अंतर से विजयी घोषित किए गए थे तथा उनके प्रतिद्वन्द्वी डॉ. शीतलचंद को ७२ तथा डॉ. सुदर्शनलाल को ९ मत प्राप्त हुए थे।) परिषद का यह विभाजन किसी सैद्धान्तिक मतभेद की अपेक्षा परिषद पर वर्चस्व स्थापित करने की स्पर्धा से हुआ अधिक प्रतीत होता था। एक विद्वत् परिषद के अध्यक्ष डॉ. राजाराम (आरा) हुए और दूसरी के डॉ. रमेशचंद्र (बिजनौर)। ये दोनों ही दिगम्बर जैन समाज के शीर्ष विद्वानों में गिने जाते हैं। परिषद के विभाजन के तुरंत बाद ही दोनों अध्यक्षों ने घोषणा की थी कि वे मूल विद्वत् परिषद के विभाजन से प्रसन्न नहीं हैं तथा दोनों परिषदों के विलय के लिए भरपूर प्रयास करेंगे, तथा डॉ. राजाराम की अध्यक्षता वाली परिषद ने इस हेतु एक एकता समिति का गठन भी कर दिया था, पर लगता है, एकता के सभी प्रयास निष्फल सिद्ध हुए।

गत वर्ष दोनों ही परिषदों ने अपने को ही मूल विद्वत् परिषद मानते हुए परिषद का स्वर्ण जयंती अधिवेशन .समारोहपूर्वक सम्पन्न किया और अब अगले तीन वर्ष के लिए चुनाव भी सम्पन्न कर लिए।

यह देखकर दुख एवं आश्चर्य होता है कि दिगम्बर जैन समाज के विद्वत् जनों के शास्त्र मर्मज्ञ अनेकान्त मनीषी शीर्ष नेता जो जैन धर्म के उदार दृष्टिकोण पर प्रवचन करते नहीं थकते, अपने आपसी मतभेद (या मन भेद) सौहार्दता पूर्वक नहीं सुलझा सके। कदाचित् टुकड़ों टुकड़ों में बटते जाना जैन समाज की परम्परागत नियति बन गई है।

अब चूंकि दोनों विद्वत् परिषदों के नेतागण अपनी परिषद का पृथक् अस्तित्व बनाए रखने के निश्चय पर अडिग हैं, अच्छा हो यदि वे 'अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत् परिषद' कहलाने का मोह त्याग कर अपने नामों में किंचित परिवर्तन कर लें ताकि हमारे जैसे सामान्य जन नाम से भ्रमित न हों।

वैसे हमारी अल्प बुद्धि में तो दोनों परिषदों में से कौन मूल परिषद है, यह विवाद तो सरलता से सुलझाया जा सकता था। मूल परिषद को रजिस्टर्ड तो कराया ही गया होगा। यदि ऐसा है तो उसके नवीनीकरण का प्रमाणपत्र जिस गुट ने भी प्राप्त किया है वही मूल परिषद समझी जानी चाहिए। यदि मूल परिषद रजिस्टर्ड नहीं कराई गई थी तो दोनों परिषदों में से जो भी अपने को इस नाम से रजिस्टर्ड करा ले उसे ही अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद कहलाने का अधिकार होगा और दूसरी को अपने नाम में परिवर्तन करना पड़ेगा।

और अब तीसरी विद्वत् परिषद भी -

अखिल भारतवर्षीय जैसवाल जैन महासभा के दरियागंज नई दिल्ली में दि. २०-२१ अक्टूबर २००१ को सम्पन्न हुए राष्ट्रीय अधिवेशन में नवनिर्वाचित अध्यक्ष डॉ. धन्यकुमार जैन ने जैसवाल जैन विद्वत् परिषद की स्थापना की घोषणा की जिसके अध्यक्ष डॉ. विमल कुमार जैन (दिल्ली) तथा उपाध्यक्ष डॉ. राजकमल जैन (मथुरा) व श्री धर्मवीर जैन, (लखनऊ) बनाए गए। यह परिषद जैसवाल जैन समाज का इतिहास तैयार करेगी तथा समाज के दोनों धड़ों-उपरौचिया व तिरौचिया को मिलाने के प्रश्न पर परामर्श देगी।

भगवान महावीर की जन्म भूमि - कुण्डलपुर : शास्त्रि परिषद का प्रस्ताव -

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि परिषद की डॉ. श्रेयांस कुमार जैन की अध्यक्षता में दि. ११ फरवरी, २००२ को सम्पन्न हुई कार्यकारिणी समिति की बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया --

"दिगम्बर जैन शास्त्रों एवं पुराणों में भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में कुण्डलपुर का ही उल्लेख प्राप्त होता है। बिहार प्रान्तार्गत नालन्दा जिले में स्थित कुण्डलपुर ही सदियों से भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में जन-जन की आस्था का केन्द्र रहा है।

गत ४-५ दशकों में हुई तथाकथित कतिपय खोजों के परिप्रेक्ष्य में कुछ विद्वान वैशाली (कुण्डग्राम वासुकुण्ड) को **भ्रांतिवश** भगवान महावीर की जन्मभूमि मानने लगे हैं।

शास्त्रि परिषद की कार्यकारिणी की यह सभा शासन से अनुरोध करती है कि भगवान महावीर की जन्मभूमि के रूप में जैन परम्परामान्य कुण्डलपुर को मान्यता देते हुए इसके विकास में सहयोग प्रदान करें।" (ऋषभदेशना, फरवरी २००२)

इसी अंक में डॉ. ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार' का लेख 'भगवान महावीर का जन्म स्थान, प्रकाशित है जिसमें वैशाली के निकट कुण्डग्राम (या वासुकुण्ड) को भगवान की सही जन्म स्थली प्रतिपादित किया गया है जो तत्कालीन विदेह देशान्तर्गत है तथा जिसे पुरातत्वविदों एवं इतिहासकारों ने अद्यावधिक शोध खोज के आधार पर भगवान की सही जन्मस्थली के रूप में चिह्नित किया है। (जबकि नालन्दा जिले वाला कुण्डलपुर मगध देशान्तर्गत है)। इस पक्ष के ही समर्थन में हमारा भी एक लेख 'जन्म नगरी कुण्डलपुर **'शोधादर्श'** ४४ (जुलाई २००१) में प्रकाशित हुआ था।

प्रचुर शास्त्रीय तथ्यों व तर्कों को अनदेखा कर शास्त्रि परिषद की कार्यकारिणी के शास्त्र मर्मज्ञ विद्वानों द्वारा पारित उपर्युल्लिखित प्रस्ताव उनकी **रूढ़िग्रस्त मानसिकता** का ही द्योतक है।

मुनि श्री को राजकीय अतिथि का दर्जा -

नीमच, ७ फरवरी - क्रांतिकारी युवा दिगम्बर जैन मुनि श्री तरुणसागर जी को मध्यप्रदेश शासन ने राजकीय अतिथि का दर्जा प्रदान कर सम्मानित किया है। जैन इतिहास में यह पहला मौका है जब किसी जैन मुनि को प्रदेश सरकार द्वारा राजकीय अतिथि का दर्जा दिया गया। आदेश प्राप्त होने पर जिला प्रशासन द्वारा मुनि श्री को दी जा रही सुरक्षा एवं आवास व्यवस्था का जायजा लिया गया और समीक्षा की गई। (जैन गजट, २१ फरवरी)

मुनि श्री के इस सम्मान से प्रसन्नता तो हमें भी हुई पर हम यह नहीं समझ पा रहे हैं कि दिगम्बर मुनि श्री द्वारा इस सम्मान को स्वीकार किए जाने के क्या अर्थ हैं। क्या मुनि श्री मध्यप्रदेश में सुरक्षाकर्मियों के घेरे में विहार करेंगे तथा राजकीय अतिथिगृहों में ठहरेंगे तथा उनमें उपलब्ध सुविधाओं का उपभोग करेंगे? हमारी अल्प बुद्धि में तो वीतरागी दिगम्बर जैन सन्त किसी के भी अतिथि न तो होते हैं और न हो सकते हैं।

भगवान महावीर को मंदिर से निकाल चौराहे पर लाने के लिए संकल्पित क्रांतिकारी मुनि श्री की दैनिक प्रवचन सभा में पच्चीस-तीस हजार जनता भी उपस्थित रहती है। १ जनवरी, २००० को लाल किला मैदान, दिल्ली में मांस निर्यात के विरोध में अहिंसा महाकुंभ का सफल आयोजन वे कर चुके हैं।

मुनि श्री के गुरु आचार्य पुष्पदंत सागर जी ने अभी हाल में अपने एक लेख में भविष्यवाणी की है कि अगले २५ वर्ष प्रभावक जैन युवा मुनियों के होंगे। कदाचित् उनका संकेत अपने ऐसे ही शिष्य पुंगवों की ओर होगा। **- अजित प्रसाद जैन**

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिक्के

शोधादर्श- ४५ में पृष्ट ३३ पर हमने तमिल मासिक **मुक्कुडै** (अक्टूबर २००१) में प्रकाशित प्रो. जीवन्धर कुमार की सूचना के आधार पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १८३६ ई. में जारी किये गये श्री भगवान महावीर के **Half Anna** मूल्य के सिक्के का विवरण दिया था। उस सिक्के के बारे में अनेक पाठकों की रुचि जागृत हुई। तदनन्तर मथुरा से प्रकाशित पाक्षिक **जैन सन्देश** (१६ जनवरी, २००२) में श्री सुधीर जैन (सतना) का ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १६१६ ई. में भगवान महावीर पर जारी किये गये एक अन्य सिक्के के बारे में, जो उनके संग्रह में है, विवरण पढ़ने को मिला।

यह सिक्का भी तांबे का है और इसका वजन भी १२ ग्राम है, किन्तु इसका व्यास ३२ मि.मी. है। सिक्के के सामने की ओर भामण्डल सहित ध्यानस्थ पद्मासन मुद्रा में २४वें जैन तीर्थंकर भगवान महावीर की प्रतिकृति उत्कीर्ण है और उसके नीचे कोई अस्पष्ट आकृति है, जिसे श्री सुधीर जैन ने उनका चिन्ह (लांछन) सिंह माना है। उक्त प्रतिकृति के एक ओर 'भगवान' और दूसरी ओर 'महावीर' देवनागरी लिपि में अर्द्ध गोलाई लिये उत्कीर्ण हैं। पृष्ठ भाग पर सबसे ऊपर अर्द्ध गोलाई में EAST INDIA COMPANY तदनन्तर कलात्मक गोल घेरे में ऊपर फारसी लिपि में 'दो पाई' और घेरे के अन्दर बड़े अक्षरों में रोमन लिपि में HALF ANNA और 1616 अंकित हैं।

श्री सुधीर जैन ने अपने आलेख में यह भी अंकित किया है कि "ऐसा अन्दाज है कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारत में पैर जमाने के लिये इस प्रकार के विभिन्न धर्मों से सम्बन्धित सिक्के या टोकन जारी किये गये होंगे। क्योंकि राम-सीता, हनुमान, मक्का आदि बने हुये ऐसे ही कुछ और सिक्के भी देखने में आये हैं।"

लखनऊ में राह चलते, सिक्कों के शौकीन एक सरदार त्रिलोक सिंह कतियाल से एक दिन हमारी अचानक भेंट हो गई और उन्होंने बताया कि उनके पास ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा १६१७ में जारी किया गया राधा-कृष्णा का सिक्का है। साथ ही उनके पास EAST INDIA COMPANY द्वारा १८०८ में जारी किये गये HALF ANNA उर्दू में दो पाई लिखे एक अन्य सिक्के का चित्र भी देखने को मिला जिसमें सामने की ओर हाथी पर विराजमान भामण्डलयुक्त एक चतुर्भुज देवता की प्रतिकृति उत्कीर्ण है जो कानों में कुण्डल व गले में माला धारण किये है। बायीं ओर ऊपर के हाथ में वह धनुष, नीचे के हाथ में तुला और दाहिनी ओर ऊपरी हाथ में पुष्प तथा निचले हाथ में कोई अन्य अस्पष्ट वस्तु पकड़े हुए है। आकृति के नीचे एक सरल रेखा खिंची है और उसके नीचे हिन्दी में १००८ अंकित है। कदाचित् यह देवराज इन्द्र, जिनकी सवारी ऐरावत हाथी है, की आकृति है।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जन्म ही सन् १६०० ई. में इंगलैंड में एक व्यापारिक कम्पनी के रूप में हुआ था और वह सन् १६१५-१८ ई. में भारत में आये ब्रिटिश राजदूत सर टामस रो द्वारा मुग़ल दरबार में अपनी पैठ बनाने के उपरान्त गुजरात के मुग़ल सूबेदार की अनुमति से केवल सूरत में व्यापारिक कोठी बनाने में सफल हो पाई थी। उसके द्वारा सन् १६१६ व १६१७ तथा तदनन्तर (१८५८ ई. में भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की वास्तविक स्थापना तक) भारत के विभिन्न धर्मावलम्बियों की आस्था के अनुरूप जारी किये गये ये सभी सिक्के हमें तो मात्र सात समुन्दर पार से आयी उस विदेशी व्यापारी कम्पनी द्वारा यहां भारत में उनके सम्पर्क में आये यहां के निवासी, विभिन्न धर्मावलम्बी व्यापारियों- ग्राहकों को लुभाने के लिये जारी किये गये टोकन मात्र प्रतीत होते हैं। हो सकता है उनका मूल्य भी, जैसा उन पर अंकित है, 'दो पाई' HALF ANNA रहा हो, और वे उक्त व्यापारी कम्पनी से लेनदेन में काम आते रहे हों। वे हमें किसी शाही टकसाल द्वारा जारी सिक्के नहीं लगते। आज भी व्यापारिक कम्पनियां अपने ग्राहकों को लुभाने के लिये इस प्रकार के उपाय करती रहती हैं। ये सिक्के ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापारिक पटुता के द्योतक हैं न कि उसकी भारत के विभिन्न धर्मावलम्बियों के इष्टदेव आदि में उसकी आस्था के। यह भी ध्यातव्य है कि ब्रिटिश शासनकाल में HALF ANNA दो पैसे या छह पाई के बराबर होता था न कि दो पाई के।

- रमाकान्त जैन

[ब्रिटिश राज के (१८५७ में) अभ्युदय के पहिले भारत में सम मूल्य के सिक्कों का ही प्रचलन था अर्थात् जो मूल्य सिक्के में प्रयुक्त धातु का होता था वही उसका विनिमय मूल्य (exchange value) होती थी, अधिकांश व्यापार वस्तु विनिमय (Barter or exchange of goods) पद्धति से ही होता था। हीन-मूल सिक्के (Base coins) ब्रिटिश राज की देन हैं। लगता है ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी छाप के ये सिक्के, जिनके दूसरी ओर स्थानीय व्यापारियों की आस्था के देवी देवताओं आदि की आकृति अंकित है, भारतीय व्यापारियों का माल खरीदने तथा बदले में अपना माल उन्हें बेचने के लिए ही सुविधाजनक टोकन के रूप में काम में लाये जाने के उद्देश्य से किसी जगत सेठी की टकसाल में ढलवाए होंगे।

भगवान महावीर की आकृति की छाप के इन सिक्कों से दो तथ्य स्पष्ट होते हैं- (१) भारतीय व्यापारियों में जिनसे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का लेनदेन का व्यापार होता था, जैन धर्मावलम्बियों की काफी बड़ी संख्या थी, तथा (२) व्यापार की वस्तुओं के मूल्य इतने कम थे कि दो पैसे (या दो पाई) में इन वस्तुओं की एक इकाई (unit) जो एक मन या एक पसेरी रही हो, खरीदी जा सकती थी। डॉ. रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर) ने अपने एक आलेख में सूरत के जैन श्रेष्ठी श्री वीर जी बोरा का उल्लेख किया है जिनका १६६० ई. में अंग्रेजों और डचों के बीच भारी व्यापार फैला हुआ था। एक डच व्यापारी ने उनके अकूत धन की चर्चा करते हुए उन्हें विश्व का सबसे बड़ा व्यापारी बताया था - **प्रधान सम्पादक**]

साहित्य सत्कार

(१) मुमुक्षु समीक्षा : ले. मुनि श्री सरलसागर म.; प्र.- श्री शिखरचंद सोंधिया, पो. महाराजपुर (सागर) म.प्र.-४७०२३०; प्र. वर्ष-१९९७, पृ.-१४५; व्यय मूल्य- डाक मात्र।

(२) त्योहार समीक्षा : ले.- वही; प्र.- अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर) - ४७०११३; प्र. वर्ष-१९९९; पृ.-२३०; मूल्य वही।

(३) पंचकल्याणक गजरथ समीक्षा : ले. व प्र.- वही; प्र. वर्ष-२०००; पृष्ठ-७०

(४) चातुर्मास समीक्षा : लेखक व प्रकाशक- वही; प्र. वर्ष-२००१; पृष्ठ-१९८

अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी पू. मुनि श्री सरलसागर म. धर्म एवं समाज में दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही कुरीतियों एवं विकृतियों से बहुत खिन्न हैं। इन कुरीतियों एवं विकृतियों को दूर किए जाने के सदुद्देश्य से समाज को जागृत करने के लिए उन्होंने अपनी उपरोक्त कृतियों में इन पर तीखे प्रहार किए हैं।

मुनि श्री की शैली व्यंगात्मक है, उपशीर्षक उत्सुकता जगाने वाले हैं तथा भाषा अटपटी है।

(१) मुमुक्षु समीक्षा में मुनि श्री ने कानजी स्वामी की निश्चय नय से प्रेरित आध्यात्मिक विचारधारा तथा उससे प्रभावित तथाकथित मुमुक्षुओं (स्वाध्याय प्रेमियों) की तीखी एवं कटु आलोचना की है। मुनि श्री का कहना है कि द्रव्यानुयोग अन्य तीन योगों का सार रूप है जिसे पचाने के लिए संयम रूपी जठराग्नि की आवश्यकता है। द्रव्यानुयोग की कथनी असंयमियों के लिए नहीं है।

(२) त्योहार समीक्षा - मुनि श्री की सोच है कि राष्ट्रीय त्योहार (स्वतंत्रता दिवस-गणतंत्र दिवस) में जनता का कोई लगाव नहीं है और वे सरकारी समारोहों में ही सिमट कर रह गए हैं। वैसे भी मुनि श्री राज तंत्र के कट्टर पक्षधर हैं और प्रजातंत्र की शासन व्यवस्था को इस देश की संस्कृति के अनुकूल नहीं समझते। दीवाली, रक्षाबंधन, होली के धार्मिक पर्व लौकिकता से जोड़ दिए जाने से विकृत रूप से मनाए जा रहे हैं, अतः अनुपयुक्त हो गए हैं। पुस्तक में १० अध्याय हैं जो अनेक उपशीर्षकों में विभक्त हैं। विवेचन व्यंगात्मक शैली में किया गया है।

(३) पंचकल्याणक गजरथ समीक्षा- मुनि श्री का कहना है कि इस पंचम काल में तीर्थंकरों के अभाव में पंचकल्याणकों का आयोजन स्थापना विधि से धर्म प्रभावना हेतु किया जाता है। ये विशुद्ध धार्मिक आयोजन हैं पर आज गजरथों ने, बोलियों ने, संगीत के कार्यक्रमों ने, प्रतिष्ठाचार्य पंडितों की धनलिप्सा आदि ने पंचकल्याणकों को महत्वहीन बना दिया है। उपशीर्षक प्रायः व्यंगात्मक हैं जैसे 'पंडित तीर कमान हैं, कमीशन उनका निशान है,' 'कुछ

साधु खर समान हैं, ख्याति नाम निशान हैं।' मुनि श्री की शैली रोचक, तर्कपूर्ण एवं मर्मस्पर्शी है। पहला ४००० प्रतियों का संस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाने से यह २००० प्रतियों का दूसरा संस्करण प्रकाशित किया गया है। पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं में आई विकृतियों को दूर कर इन्हें पूरी तरह धार्मिकता से जोड़ने के लिए पुस्तक के अधिकाधिक प्रचार की आवश्यकता है। मुनि श्री का विश्लेषण मननीय और चिन्तनीय है।

(४) चातुर्मास समीक्षा - वर्षा ऋतु में मार्गों में जलभराव आदि के कारण चातुर्मास की स्थापना करके एक ही स्थान पर स्थिरावास करने की परम्परा घुम्मक्कड़ पगविहारी परिव्राजकों में अति प्राचीन काल से चली आ रही है। पर अब यह परम्परा रूढ़ि बन गई है और ऐसे त्यागी भी जो वाहन-विहारी हैं (ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, मठाधीश, भट्टारक आदि।) वे भी आज चातुर्मास स्थापना कर रहे हैं जिसका कोई औचित्य नहीं है। समीक्ष्य पुस्तक में चातुर्मास स्थापना से लेकर समापन तक में आई विकृतियों का सूक्ष्मता से विवेचन किया गया है। मुनि श्री के अनुसार चातुर्मास स्थापना दिन में समारोहपूर्वक की जाने लगी है जबकि अनेक साधु अब भी प्रदर्शन से बचने के लिए रात्रि में एकान्त में ही करते हैं। श्रावकों की याचना पर किसी स्थान विशेष पर चातुर्मास की स्थापना सशर्त की जाने लगी है। जन्म जयन्ती, दीक्षा जयन्ती गुरु का समाधि दिवस, पिच्छी परिवर्तन आदि समारोहपूर्वक मनाने की, बाहर से दर्शनार्थ आने वाले भक्तों के आहार विश्राम की सुचारू व्यवस्था, वृहद् पूजा विधान आदि की शर्तें रखी जाती हैं परिणाम स्वरुप दिगम्बर जैन साधु के चातुर्मास पर बहुत व्यय होने लगा है यहां तक कि लोग चातुर्मास कराने से कतराने लगे हैं। पिच्छी परिवर्तन तभी किया जाना चाहिए जब पिच्छी अनुपयुक्त हो जाय पर अब सभी साधु अनिवार्य रूप से चातुर्मास समापन के समय समारोह पूर्वक पिच्छी परिवर्तन करने लगे हैं, चाहे किसी को दीक्षा लिए एक दो महीना ही हुआ हो, आदि आदि। पुस्तक मननीय व चिन्तनीय है।

(५) सिन्धु- सरस्वती सभ्यता एवं आर्यों का प्रश्न : ले. मिशेल दनिनो, अनु.- प्रो. सुभाष चन्द्र गुप्ता, प्र.- सि.पं. फूलचंद्र शास्त्री फाउंडेशन, रुड़की-२४७६६७; प्र. वर्ष २००१, पृ.-३०; मूल्य रु. २०/-

यह सुप्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता मिशेल दनिनो द्वारा इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेकनॉलोजी, चेन्नई में दि. २१ सितम्बर, २००१ को दिए गए व्याख्यान का भाषानुवाद है। विद्वान व्याख्याता के अनुसार विगत दशाब्दियों में भारत व पाकिस्तान की सीमा के दोनों ओर किए गए पुरातात्विक पर्यवेक्षणों में हड़प्पा, मोहनजोदड़ो सहित ऐसे सैकड़ों स्थल प्रकाश में आए हैं जो घग्गर-हाप्काश की घाटी में स्थित एक बड़ी पर अब सूखी नदी की तलहटी के समीप हैं। यह नदी सिन्धु तथा जमना नदियों के बीच बहती हुई सिन्धु के ही समान अरब सागार में गिरती थी। यह विलुप्त नदी अब वेदों व पुराणों में वर्णित सरस्वती नदी ही मानी जा रही है जिसके

समीप वैदिक सभ्यता व संस्कृति सहित इस देश की आद्य संस्कृति पनपी व विकसित हुई थी। इस आदि सभ्यता, जिसे अब पुरातत्वविद सिन्धु-सरस्वती सभ्यता का नाम देते हैं, के उपलब्ध पुरावशेषों से एक अद्‌भुत तथ्य जो प्रकाश में आया है वह है कि किसी भी पड़ाव पर, किसी भी समय-यहां तक कि इस सभ्यता के बाल्यकाल में भी, सेनाओं या युद्धों या हत्याकांडों या मनुष्य कृत विजारा की पूर्ण रूप से अनुपस्थिति। श्री दनिनो का यह भी निष्कर्ष है कि आर्य कहीं बाहर से नहीं आए थे, वरन इस देश के ही मूल निवासी थे।

श्री दनिनो ने सिन्धु - सरस्वती सभ्यता का जो चित्रण प्रस्तुत किया है वह जैन पुराण शास्त्रों में वर्णित भगवान ऋषभदेव - भरत चक्रवर्ती कालीन इस देश की अहिंसक आद्य सभ्यता-संस्कृति की पुष्टि करता है। कुछ वर्ष पूर्व एक पाकिस्तानी पुरातत्वविद ने यह संभावना व्यक्त की थी कि पुराणों में वर्णित प्राचीन अयोध्या कदाचित् इस सिन्धु-सरस्वती सभ्यता के उत्तरी छोर पर स्थित थी। श्री दनिनों के आलेख के साक्ष्य के आधार पर शोधकर्ता विद्वानों को इस संभावना पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। प्रो. पी. आर. देशमुख ने भी अपनी पुस्तक **Indus Valley Civilization, Rigveda and Hindu Culture** में लिखा है कि जैनों के पहले तीर्थंकर सिन्धु सभ्यता से ही थे।

(६) जैन इतिहास : ले. मुनि श्री सुनील सागर म.; प्र.- श्री अशोक कुमार जैन (चाय वाले), अशोक टी सेंटर, २/१४६, फव्वारा चौक, उज्जैन; प्र.वर्ष- २००१, पृ.-४०., मूल्य- रु. १५/-

युवा मुनि श्री ने इस लघु पुस्तिका में दिगम्बर जैन शास्त्रों एवं कथा ग्रंथों में वर्णित जैन इतिहास को अति संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत किया है तथा ऋग्वेद की कतिपय ऋचाओं व श्रीमद्‌भागवत् आदि हिन्दू पुराणों के आधार से तथा हड़प्पा-मोहनजोदड़ों के पुरावशेषों के साक्ष्य से भगवान ऋषभदेव एवं जैन धर्म की प्राचीनता को सिद्ध किया है। जैन इतिहास का प्रारंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पुस्तिका उपयोगी है।

(७) जैनाचार विज्ञान : ले. मुनि श्री सुनील सागर म., प्र.- कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, ५८४, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इंदौर-४५३००१, प्र. वर्ष- २००१, पृ.-६०; मूल्य रु.२०/-

समीक्ष्य पुस्तिका में युवा मुनि श्री ने जैन श्रावकाचार सम्मत जीवन चर्या का विस्तार से वर्णन करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि जैनाचार्यों द्वारा उपदिष्ट जीवन शैली ही मानव के लिए सर्वाधिक उपयुक्त वैज्ञानिक तथा प्रकृति से सामंजस्य रखने वाली जीवन पद्धति सिद्ध हुई है। यह कृति किशोरों, युवाओं के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।

(८) दैनिक जिन पूजन संग्रह : सम्पा. व प्राप्ति- श्री महावीर प्रसाद जैन, स्वतंत्रता सेनानी, ३३२ स्कीम नं. १०, अलवर; प्र. वर्ष- १९९८; पृ. ४५; मूल्य-रु. ३/-

इस लघु पुस्तिका में टोडरमल स्मारक भवन की आध्यात्मिक विचारधारा से प्रभावित श्री युगल किशोर, डॉ. हुकमचंद भारिल्ल, श्री राजमल पवैया आदि द्वारा रचित प्रतिदिन की जाने वाली आठ सरस पूजाओं को संकलित किया गया है।

(९) क्षत्र चूड़ामणि : आ. वादीभ सिंह सूरिकृत, भाषा टीका व सम्पादन-ब्र. यशपाल जैन; प्रस्तावना-पं. रतनचंद भारिल्ल; प्र.- श्री अ.भा. दि. जैन विद्वत् परिषद, १२९ बी, जादोन नगर, स्टेशन रोड, दुर्गापुरा, जयपुर-३०२०१८, प्र.वर्ष- २००१; पृ. ५६२; मूल्य रु. ३०/-

समीक्ष्य ग्रंथ में ग्रंथकार आचार्य श्री ने तद्भव मोक्षगामी जीवन्धर कुमार के जीवन चरित्र के आलम्बन से नीतिशास्त्र के एक उच्च कोटि के ऐसे काव्य ग्रंथ की रचना की है जिसे भारतीय नीति शास्त्र साहित्य में एक प्रमुख स्थान प्राप्त है। इस ग्रंथ के श्लोकों में एक पंक्ति में कथा चलती है तथा दूसरी पंक्ति में नीति का वर्णन। भाषा सरल है। टीकाकार ने प्रत्येक श्लोक का अन्वयार्थ, सरलार्थ, विशेषार्थ देने के अतिरिक्त प्रत्येक श्लोक के शीर्षक भी दिए हैं जिससे श्लोक का भाव समझने में सुविधा हो।

ग्रंथ के रचयिता आचार्य वादीभ सिंह सूरि (१०वीं शताब्दी के दक्षिणात्य विद्वान्) संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पंडित थे। उन्होंने जीवंधर चरित पर गद्य में भी **गद्य चिन्तामणि** नामक एक ऐसे श्रेष्ठ ग्रंथ की रचना की है जो महाकवि बाण भट्ट की रचना पद्धति को भी पीछे छोड़ देता है।

क्षत्र चूड़ामणि ग्रंथ के इससे पूर्व भी कई अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं पर समीक्ष्य संस्करण कदाचित् उन सबमें श्रेष्ठ है। कतिपय दातार बन्धुओं के आर्थिक सहयोग से ग्रंथ का मूल्य लागत से कहीं कम मात्र रु. ३०/- रखा गया है। अल्प मूल्य में ऐसे श्रेष्ठ ग्रंथ के प्रकाशन के लिए अ.भा.दि. जैन विद्वत् परिषद बधाई की पात्र है।

(१०) बोधिसत्व (नाटक) : मूल मराठी नाटककार- धर्मानंद कोसंबी; अनुवादक व सम्पादक- स्व. श्री कस्तूरचंद बांठिया और श्री जमनालाल जैन (सारनाथ); प्र.- केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान, सारनाथ, वाराणसी; प्र. वर्ष-२००१; पृ.-७०; मूल्य- रु. ५५/-

स्व. श्री धर्मानन्द कोसंबी प्राचीन बौद्ध धर्म साहित्य के गहन अध्येता, चिन्तक एवं मर्मज्ञ विद्वान थे। इस नाटक में श्री कोसंबी ने बौद्ध आगम ग्रंथ त्रिपिटक का मंथन कर भगवान बुद्ध के बोधि प्राप्ति तक के जीवन का बड़ा ही हृदयग्राही सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है जो परम्परागत बहु प्रचलित मान्यताओं से हटकर है। इसके अनुसार राजा शुद्धोधन शाक्य संघ के प्रमुख न होकर शाक्य संघ के एक सभासद मात्र हैं जो लुम्बिनी ग्राम के अधिपति भी हैं और जो अपने श्रमिकों व दासों के साथ स्वयं भी हल चलाते हैं, जुताई, बुवाई करते हैं तथा सपरिवार अन्य सभी श्रम वाले कृषि कर्म करते हैं। जब गौतम बीस वर्ष के हो जाते हैं तो शुद्धोधन उन्हें अपने

स्थान पर शाक्य संघ का सभासद बनवा देते हैं और स्वयं निवृत्त हो जाते हैं। शाक्य संघ लिच्छवियों के वज्जिसंघ के समान पूर्णप्रभुता सम्पन्न शक्तिशाली गण राज्य नहीं है। उस पर कोसल राज का प्रभुत्व है और उसे केवल आन्तरिक स्वतंत्रता ही प्राप्त है। खेती के लिए रोहिणी नदी के जल के बटवारे को लेकर शाक्यों व कोलियों में वैमनस्य गंभीर रूप धारण कर लेता है और शाक्य संघ गौतम के विरोध के बावजूद बहुमत से कोलियों से युद्ध करने का निर्णय ले लेता है तथा शाक्य सेनापति बीस से पचास वर्ष के सभी सुदृढ़ शाक्यों को युद्ध के लिए तैयार हो जाने की आज्ञा देते हैं किन्तु गौतम युद्ध में भाग लेने से इंकार कर देते हैं। संघ की आज्ञा न मानने के दंड में अपने परिवार को बहिष्कार तथा खेतों के जब्त किए जाने से बचाने के लिए गौतम स्वेच्छा से सात दिन के भीतर शाक्य देश की सीमा के बाहर परिव्राजक बनकर चले जाने की घोषणा करते हैं।

भगवान पार्श्वनाथ के चातुर्याम धर्म का तथा भगवान महावीर के ब्रह्मचर्य व्रत पर जोर देने का प्रभाव बोधिसत्व के जीवन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने के संवाद नाटक में यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होते हैं जो प्राचीन बौद्ध आगमों पर आधारित हैं।

नाटक की शैली रोचक है, अनुवाद की भाषा सशक्त है, संवाद हृदयग्राही हैं तथा भगवान बुद्ध के जीवन प्रसंगों को तर्कयुक्त प्रस्तुत किया गया है।

(११) अनेकान्त भवन ग्रंथ रत्नावली-३ : सम्पादक- ब्र. संदीप सरल; प्र.- अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान, बीना (सागर) म.प्र.; प्र. वर्ष-२००१; पृ. सं. २१०+२५

यत्र-तत्र विकीर्ण जैन पांडुलिपियों के संकलन व संरक्षण के लिए समर्पित ब्र. संदीप सरल द्वारा संस्थापित एवं उनके निर्देशन में संचालित अनेकान्त ज्ञान मंदिर शोध संस्थान बीना द्वारा अनेक शास्त्र भंडारों व जिनालयों से संकलित किए गए लगभग ७००० हस्त लिखित ग्रंथों के सूचीकरण के माध्यम से कई अचर्चित ग्रंथ प्रकाश में आए हैं। प्रस्तुत ग्रंथ रत्नावली-३ में ३४०१ हस्तलिखित ग्रंथों को सूचीबद्ध किया गया है। इसका प्रकाशन भगवान महावीर स्वामी की २६००वीं जन्म जयंती वर्ष के अंतर्गत किया गया है। सूची में १४ शीर्षकों के अन्तर्गत ग्रंथ का विवरण अंकित किया गया है।

(१२) समीचीन सर्वधर्म सोपान : ले. पं. नाथूराम डोंगरीय जैन 'अक्जीन्द्र, प्र. कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ, ५८४, महात्मा गांधी मार्ग, तुकोगंज, इंदौर-४५२००१; प्र. वर्ष-२००१; पृ. १६८; मूल्य रु. २०/-

३० से अधिक कृतियों के सर्जक/अनुवादक विद्वान पंडित जी ने समीक्ष्य ग्रंथ में जैन धर्म के सिद्धान्तों का निश्चय-व्यवहार नयों का समन्वय करते हुए सरल सुबोध भाषा में निरूपण किया है। १० अध्यायों में विभक्त इस ग्रंथ में धर्म का स्वरूप एवं सम्यग्दर्शन, मानव के दैनिक कर्तव्य और उनका महत्व, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और उसकी पात्रता, संस्कृति एवं संस्कार,

श्रावक धर्म, जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त, जैन दर्शन में भगवद् भक्ति, गुण स्थानों के, निरूपण सहित संस्कृत भाषा के सात अति प्रसिद्ध जिन स्तवनों के परिचय सहित भाषानुवाद, बारह भावना तथा मेरी भावना के पाठ दिए गए हैं। पुस्तक सामान्य जन के लिए जैनधर्म एवं दर्शन की सर्वांगीण जानकारी प्राप्त करने के लिए बहुत उपयोगी है। धर्मनिष्ठ सेठ श्री बाबूलाल तोताराम जी के उदार आर्थिक सहयोग से इस ग्रंथ का मूल्य मात्र रु. २०/- रखा गया है। भगवान महावीर के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष में इस ग्रंथ के सर्व सुलभ प्रकाशन के लिए कुन्दकुन्द ज्ञानपीठ बधाई की पात्र है।

(१३) चम्बल घाटी का श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र सिंहोनिया : ले. श्री रामजीत जैन एडवोकेट; प्र.- जैन समाज, लश्कर, ग्वालियर; प्र. वर्ष-२००२; पृ. २८; मूल्य- रु. १०/-

लगभग ७५ वर्ष पूर्व म.प्र., मुरैना जिले के सिंहोनिया ग्राम से १ किलोमीटर की दूरी पर एक प्राचीन टीले पर वहीं भूगर्भ से प्राप्त बलुए पाषाण कत्थई वर्ण की भगवान शान्तिनाथ की अतिमनोज्ञ एवं अतिशययुक्त १३ फुट ऊंची खड्गासन प्रतिमा को उसी स्थान पर प्रतिष्ठित कर जिनालय आदि का निर्माण कर इस अतिशय क्षेत्र की स्थापना की गई है। प्रतिमा १०-११वीं शताब्दी की अनुमानित की जाती है। बाद में इसी स्थल के आसपास से कुछ और भी खंडित-अखंडित प्रतिमाएं प्राप्त हुईं जिन्हें भी क्षेत्र पर ही विराजमान कर दिया गया है। जैन जगत के सुप्रसिद्ध लेखक, इतिहासकार श्री रामजीत जैन एडवोकेट (ग्वालियर) कृत इस क्षेत्र परिचय पुस्तिका में चम्बल घाटी के सांस्कृतिक इतिहास, पुरातत्व आदि पर भी प्रकाश डाला गया है। पुस्तिका के अंत में श्री होतीलाल जैन वरैया कृत क्षेत्र पूजा तथा मेरी भावना का पाठ दिया गया है।

- अजित प्रसाद जैन

(१४) श्री सुहेलबावनी : रचयिता पं. गुरु सहाय दीक्षित 'द्विजदीन'; सम्पादक, लिपिकार एवं संग्रहकर्ता-श्री प्रताप शंकर दीक्षित; प्र. श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (धर्म संरक्षिणी) महासभा, प्रकाशन विभाग, श्री नंदीश्वर फ्लोर मिल, ऐशबाग, लखनऊ २२६००४; द्वि.सं. २००१; पृ. ३१; मूल्य रु. २५/-

चवालिस वर्ष की अल्प आयु में काल कवलित हो जाने वाले पं. गुरुसहाय दीक्षित 'द्विजदीन' हिन्दी के शिक्षक और सुकवि थे। उनका अधिकांश जीवन बहराइच में बीता था। बहराइच के समीप सन् १०३३-३४ ई. में श्रावस्ती के जैन नरेश सुहेलदेव का विदेशी आक्रान्ता महमूद गज़नवी के सिपहसालार सैयद सालार मसऊद के साथ युद्ध हुआ था। उस युद्ध में सुहेलदेव ने सैयद सालार को अपने पराक्रम से मार गिराया था। इस ऐतिहासिक प्रसंग ने भी

अन्य विषयों के साथ कवि के भावुक मन को स्पर्श किया था। सुहेलदेव की शौर्यगाथा को लेकर उन्होंने ६४ छन्द रचे थे, जिन्हें उनके मरणोपरान्त उनके सुपुत्र प्रताप शंकर ने संकलित-सम्पादित कर डॉ. केशरी नारायण शुक्ल की प्रस्तावना सहित महाकवि भूषण की 'शिवाबावनी' की तर्ज़ पर **'श्री सुहेलबावनी'** नाम से सन् १९५० में प्रकाशित किया था। इस कृति में जैसा कि इसके परिचय में अंकित है-

नव नायिका नैन कटाक्ष नहीं,
झनकार यहां तलवार की है।
मनुहार न मानिनी के मन की,
न कहीं कथा प्यार दुलार की है।
उद्‌गार हैं टूटे हुये दिल के,
फिर शान चढ़ी ललकार की है।
जयकार है भूपति सूर सुहेल की,
व्यंजित हार सलार की है।।

अब इसका यह द्वितीय संस्करण सुहेलदेव और श्रावस्ती तीर्थक्षेत्र के परिचय के साथ प्रकाशित हुआ है जो ओजपूर्ण रचनाओं के रसिकों के लिये आनंदवर्द्धक है।

(१५) द्विजदीन काव्य मंजूषा : रचयिता पं. गुरुसहाय दीक्षित 'द्विजदीन'; सम्पादक, लिपिकार एवं संग्रहकर्ता- श्री प्रताप शंकर दीक्षित; प्र. हरकचंद निर्मल कुमार जैन चेरिटेबुल ट्रस्ट, सीतापुर; प्र.सं. २००१; पृ. १८०; मूल्य रु. १००/-

"शारदे निहार दे तो हिन्दी नवरत्न होके,
कविता के नौ रस समुद्र लहराय दे।।"

यह अभिलाषा रखने वाले कवि द्विजदीन की इस मंजूषा में संचित ब्रजभाषा के छन्द मनमोहक हैं। इनमें विभिन्न रसों की धारा बड़ी कुशलता से प्रवाहित हुई है। कवि विविध विषयों पर समस्या पूर्ति करने में पटु थे, यह इस संकलन से स्पष्ट है। उनके इस काव्य संकलन को डॉ. केशरी नारायण शुक्ल, श्री अमृतलाल नागर, पं. श्री नारायण चतुर्वेदी, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, प्रभृति सशक्त हस्ताक्षरों के पुरोवाक् ने चाद चांद लगाये। काव्य रसिकों के लिये यह मंजूषा संग्रहणीय है।

(१६) समयसार : हिन्दी रूपान्तरकार श्री सुबोध कुमार जैन; प्र. निर्मल प्रकाशन, श्री जैन सिद्धान्त भवन, देवाश्रम, महादेवा रोड, आरा (बिहार); द्वि.सं. २००१; पृ. ३४; मूल्य रु. ८। -

प्रथम शती ईस्वी के प्रारंभ में हुए आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा शौरसेनी प्राकृत में ४१५ गाथाओं में प्रणीत अध्यात्म-ग्रन्थ **समयसार** का यह हिन्दी पद्यानुवाद कवि, कहानीकार,

नाट्यकार और चित्रकार के रूप में विश्रुत, स्वाध्यायी और जैन विद्या के रसिक वयोवृद्ध विद्वान वा. सुबोध कुमार जैन द्वारा किया गया है। समयसार के अध्येताओं का उसमें निहित गूढ़ आत्म तत्व को समझने में यह पद्यानुवाद सहायक होगा, ऐसा विश्वास है।

(१७) जयणा मंगलम् : प्र. सर्वश्री हर्षित मुकुंदभाई, हेमेश दीपक भाई व निधि दीपक भाई; प्राप्ति स्थान- पानाचंद नानुभाइ झवेरी, एटलास एपार्टमेन्ट, ए विंग, १० माला, नारायण वाभोलकर रोड, श्रीपालनगर के बाजु में, मुम्बई-४०० ००६; २००१; पृ. ६६+३

जैन शासन के सिद्धान्तों द्वारा जगत के सभी जीवों का कल्याण हो, इस पुनीत भावना के साथ वर्धमान संस्कृति धाम द्वारा पूर्व प्रकाशित पुस्तक **श्रावकनी जयणापोथीनो** से पू. आ. श्री वि. राजेन्द्र सूरि महाराज द्वारा संकलित अंश और पू. मुनि श्री भव्यदर्शन द्वारा लिखित **रात्रिभोजन** पापथी बयो पुस्तक को सम्पादित कर मुमुक्षुओं (श्रावकों) के उपयोग के लिये यह लघु पुस्तिका गुजराती में प्रकाशित हुई है।

(१८) पराया माल अपना : लेखिका- साध्वी डॉ. प्रियदर्शना श्री एवं साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री; प्र. पारदर्शी प्रिन्टर्स, २६१, ताम्बावती मार्ग, उदयपुर-३१३००१; प्र. २००१; पृ. ४०

प्रस्तुत पुस्तिका में लेखिकाद्वय ने कतिपय सन्त-सतियों, लेखक-वक्ताओं द्वारा दूसरों के लेखन-सृजन पर अपने नाम की छाप लगाने की दुष्प्रवृत्ति की भर्त्सना करते हुए साहित्यिक चोरी के कुछ मामलों का सप्रमाण पर्दाफाश करने का अदम्य साहस किया है, जो सराहनीय है।

(१९) यह जीवन कठिन कहानी है : रचयित्री श्रीमती ज्ञानमाला जैन; प्र. सिद्धान्ताचार्य पं. फूलचंद्र शास्त्री फाउन्डेशन, रुड़की-२४७६६७; प्र. सं. २००१; पृ. ८८; मूल्य रु. २०/-

यह कविता संग्रह भोपाल में प्रधानाध्यापिका रही ७४ वर्षीया सरल, स्वाध्यायी, संवेदनशील एवं धर्मात्मा श्रीमती ज्ञानमाला द्वारा प्रणीत है। प्रस्तुत संकलन में वंदना और क्षणिकाओं के अतिरिक्त उनकी उनचास भावप्रवण रचनाएं समाहित हैं। वीर-वंदना करते हुए वह कहती हैं-

चन्द्रमुख से चन्द्रिका सी, झर रही जो अमियवाणी।
सुनी भी अगणित जनों ने, तर गये अनगिनत प्राणी।
खींचती है भक्ति तेरी, दूं तुझे मैं क्या समर्पण।
दोष मेरे दिख सकेंगे, बन गया तू आज दर्पण।
जयति जय है जयति जय जय, वीर तेरी अर्चना है।।
वीर तेरी वन्दना है।

भावानुकूल शब्द चयन करने में पटु कवयित्री ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रसंगों को स्पर्श किया है और प्रसंगानुकूल रसधार प्रवाहित की है। 'दुख रजनी के ढल जाने पर, सुख

ऊषा छटा दिखायेगी' पंक्तियों में जहां उसकी आशावादिता झलकी है, वहीं 'पद से बाधाओं को दल दो, साहस कर कांटों पर चल दो', तथा 'आगे बढ़ूं निडर होकर के, भाग्य चक्र से आज लड़ूंगी', पंक्तियों में उसके साहसी जुझारू व्यक्तित्व का परिचय मिलता है। 'इस चुनाव की जय को ही मानव जय मान रहा है' रचना में जहां वर्तमान चुनाव प्रणाली पर सशक्त चोट की गई है वहीं 'नियति तुम कब तक छलोगी? बना छलनी अब हृदय मम' में नियति को उसने उपालम्भ दिया है। 'आरती स्वीकार कर लो! दीप मेरा बुझ न पाए' में जहाँ मनुहार है, वहीं 'अबला के आंचल में पय है,नयनों में आंसू की भाषा। अरे महाकवि क्यों की तूने नारी ही की यह परिभाषा' में आक्रोश। कहीं कोई रचना छायावादी हो उठी है, कहीं कोई आध्यात्मिक और रहस्यवादी। कहीं कोई रचना विप्रलम्भ श्रृंगार की बन पड़ी है, कहीं करुण रस से ओतप्रोत। कहीं राष्ट्रीय चेतना मुखरित हुई है, कहीं प्रकृति का चित्रण। खड़ी बोली हिन्दी में निबद्ध ये रचनाएं कहीं गीत हैं, कहीं आजकल के अगीत। समग्रतः यह संकलन काव्यरसिकों के लिये आनन्दवर्द्धक है।

(२०) सर्जना (ग़ज़ल-संग्रह) : रचनाकार डॉ. परमानन्द जड़िया: प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री-टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; प्र.सं. २००१; पृ. ६८; मूल्य रु. ५०/-

साहित्य की विविध विधाओं में अब तक प्रकाशित ४० कृतियों से भारती का भण्डार भरने वाले समर्थ साहित्यकार डॉ. जड़िया का **दीपिका, गुलदस्ता** और **उद्‌गार** के उपरान्त यह चौथा ग़ज़ल संग्रह है। पूर्व संकलनों की भांति प्रस्तुत संकलन में समाहित, बहरों में बद्ध, ५८ ग़ज़लों के माध्यम से वर्तमान विसंगतियों पर रचनाकार ने सशक्त चोट की है। ग़ज़लकार कहता है-

बूंद पानी को तरसते लोग कुछ।
कुछ के घर की टंकियों में जूस है।
मर रहा कोई बिना उपचार के।
जा रहा कोई विलासी रूस है।।

प्रस्तुत संकलन भी ग़ज़ल प्रेमियों को आनन्दप्रद और चेतना जाग्रत करने वाला सिद्ध होगा।

(२१) मिलन से महाप्रयाण तक (स्मृति ग्रंथ) : रचनाकार डॉ. परमानन्द जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६/५१, खत्री-टोला, मशकगंज, लखनऊ-२२६०१८; प्र.सं. २००२; पृ. ६०; मूल्य रु. ३०/-

डॉ. जड़िया द्वारा अपनी धर्मपत्नी श्रीमती विष्णु कुमारी 'बिसना' के मरणोपरान्त उनकी स्मृति में गद्य-पद्य में निबद्ध यह लघु स्मृति-ग्रन्थ नितान्त व्यक्तिगत होते हुए भी समाज के लिये

प्रेरणादायी है। 'इसमें अभिव्यक्ति है अगाध प्यार की, अन्तस्-पीड़ा कवि है बसाये हुए। मिलन से महाप्रयाण तक बिसना की स्मृति परमानन्द है सजाये हुए।' यह लघु पुस्तिका इतनी भाव-प्रवण रही कि एक बार जब पढ़ना प्रारम्भ किया तो पूरी कर लेने पर ही विराम दिया। किसी कृति की सफलता की यही तो कसौटी है।

यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है। प्रारम्भ में २६ पृष्ठों में गद्य में जड़िया जी ने अपनी जीवन सहचरी की परिणय से प्रयाण तक यात्रा का चित्रण सहज भाव से किया है। इसमें तत्कालीन पारिवारिक-सामाजिक परिवेश और जीवन संघर्ष की कथा समाहित है। तदनन्तर १६ पृष्ठों में 'प्रस्थान के प्रसून' के अन्तर्गत २६ सवैया और १८ कवित्तों के माध्यम से दिवंगता को अपनी काव्यांजलि अर्पित की है, जो भावपक्ष और कलापक्ष दोनों दृष्टियों से अनुपम है। श्रृंगार और करुण रस की गंगा-यमुनी धार इसमें प्रवाहित है। कवि की व्यथा इन पंक्तियों में दृष्टव्य है-

किससे अब रूठें, लड़ें, झगड़ें,
किससे हंस बोल के प्यार करें।
किसको दुख दर्द सुना अपना,
हलका मन का दुख भार करें।।

आंसू, वेदना, सरोज-स्मृति, स्वर्गता, मधुर-स्मृतियां, श्मशान का फूल, श्रेयस स्मृति शेष आदि स्मृति-काव्यों की श्रृंखला में प्रस्तुत कृति अपना अनन्य स्थान प्राप्त करेगी और काव्यरसिक भावुक पाठकों को आनन्दित करेगी।

(२२) श्री मांगीतुंगी जी दिगम्बर जैन सिद्धक्षेत्र परिचय व पूजा : लेखक ब्र. पं. गणेशलाल नाथूलाल जैन; सम्पादक प्रो. माणिकचंद एस. पहाडे, मालेगांव एवं डॉ. सूरजमल गणेशलाल जैन, मांगीतुंगी जी; प्र. श्री हुकमचंद गुलाबचंद गंगवाल, अध्यक्ष, श्री मांगीतुंगी दि. जैन सिद्धक्षेत्र ट्रस्ट कमेटी; प्र.सं. २००१; पृ. ७२ सचित्र।

महाराष्ट्र में जिला नासिक के ताल्लुका सटाणा में 'गालना हिल्स' में उत्तर दिशा में दो पर्वतशिखर हैं-- मांगीगिरी और तुंगीगिरी। समुद्रतल से ये क्रमशः ४३४३ व ४३६६ फुट की ऊंचाई पर हैं। मांगीगिरी पर सीता गुफा, महावीर गुफा, आदिनाथ गुफा, शांतिनाथ गुफा, पार्श्वनाथ गुफा, रत्नत्रय गुफा और बलभद्र गुफा में इन महापुरुषों की तथा तुंगीगिरी पर राम गुफा और चन्द्रप्रभु गुफा में रामचन्द्र, हनुमान, सुग्रीव, सुडील, गव, गवाक्ष, नील, महानील तथा तीर्थंकर भगवन्त की व यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियां हैं। इन दोनों गिरिशिखरों के मध्य में नारायण कृष्ण की पार्थिव देह के अग्नि संस्कार का प्रतीक स्वरूप 'कृष्ण कुंड' बना हुआ है। कहा जाता है इन दोनों पर्वतों से अनेक महानुभावों ने मुक्तिलाभ किया था। अतः यह सिद्धक्षेत्र कहलाता है। **निर्वाण काण्ड** और रविषेण के **पद्मपुराण** में इनका उल्लेख है।

प्रस्तुत पुस्तक में इस सिद्धक्षेत्र का परिचय, पूजन और यहाँ के चमत्कार आदि का वर्णन हुआ है। साथ ही क्षेत्र से जुड़े रहे दिवंगत आचार्य श्रेयांस सागर जी व मुनि प्रबोधसागर जी के परिचय के साथ-साथ क्षेत्र पर उपलब्ध सुविधाओं आदि और क्षेत्र की भावी योजनाओं की जानकारी देकर इसे इस सिद्धक्षेत्र की यात्रा करने वालों के लिये उपयोगी बनाया गया है।

(२३) वर्द्धमान कैसे बने महावीर : लेखिका श्रीमती लता बोथरा; प्र. श्री जैन श्वेताम्बर पंचायती मन्दिर, १३६, कॉटन स्ट्रीट, कलकत्ता-७००००७; प्र. सं. २००१; पृ. ५६; मूल्य रु. १५/-

विदुषी लेखिका ने इस पुस्तिका में तीर्थंकर परम्परा का संक्षिप्त परिचय देते हुए, इसकी प्राचीनता ऋग्वेद व जैनेतर पुराणों में प्राप्त उल्लेखों से पुष्ट करते हुए और भगवान महावीर के कुछ प्रमुख भवों का वर्णन करते हुए उनके जीवन की घटनाओं के आधार से यह प्रतिपादित किया है कि सिद्धार्थ- त्रिशला नन्दन वर्द्धमान, जो देवता नहीं मानव थे, कैसे स्वयं के पुरुषार्थ से पुरुष से महापुरुष, मानव से महामानव और वर्द्धमान से महावीर बने। उनका जीवन-दर्शन, उनके ३० वर्षीय केवली जीवन का संक्षिप्त वृतान्त और उनकी वाणी के विशिष्ट अंश इसमें समाहित किये हैं। साथ ही विभिन्न आचार्यों, विद्वानों आदि के मतों को कुशलता से पुस्तिका में अनुस्यूत किया है।

(२४) भगवान महावीर और प्रजातन्त्र : लेखिका श्रीमती लता बोथरा; प्र. सोनाचन्द दीपकचंद बॉयेड चैरिटेबिल ट्रस्ट, ६/१०, सीतानाथ बोस लेन, सालकिया, हावड़ा- ७१११०६; प्र.सं.-६.४.२००१; पृ. ४८; मूल्य रु. १५/-

इस पुस्तिका में विदुषी लेखिका ने भारत और इसके बाहर विश्व के अन्य देशों में प्राचीन काल से अब तक की प्रजातंत्रीय प्रणाली और उसके सम्बन्ध में विभिन्न देशी-विदेशी राजनीति विशारदों के विचारों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत करते हुए यह प्रतिपादित किया है कि राजनीति से स्वयं विलग रहने वाले भगवान महावीर के **सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह** और **ब्रह्मचर्य** नामक पंच महाव्रतों और राजनैतिक एवं सामाजिक मतभेदों को दूर करने की उनके द्वारा दी गई कुंजी **अनेकान्तवाद** ने प्रजातंत्र की प्रथम संस्था नगर राज्य को चलाने का सुदृढ़ आधार केवल भारत में ही नहीं वरन् बाहर भी, जहां-जहां नगर राज्यों का विकास हुआ, प्रदान करने में अपनी सार्थकता सिद्ध की। पुस्तिका में वर्णित सभी तथ्यों से हमारी या अन्य किसी की पूर्ण सहमति हो यह आवश्यक नहीं।

(२५) संस्कृति का आदि स्रोत जैन धर्म : लेखिका श्रीमती लता बोथरा; प्र. श्री जैन भवन, पी-२५, कलाकार स्ट्रीट, कलकत्ता- ७००००७; प्र.सं. ६.४.२००१; पृ. ६४; मूल्य रु. २४/-

डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के शब्दों में, "जैन धर्म एक ऐसी सनातन धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है जो शुद्ध भारतीय होने के साथ-साथ प्रायः सर्वप्राचीन जीवन्त परम्परा है। उसके उद्गम और विकासारम्भ के बीज सुदूर अतीत प्रागैतिहासिक काल में निहित हैं। मानव जीवन में कर्मयुग के प्रारम्भ के साथ ही इस सरल स्वभाव आत्मधर्म का आविर्भाव हुआ था।" इस लघु पुस्तिका में विदुषी लेखिका ने विभिन्न जैन-जैनेतर, भारतीय-विदेशी विद्वानों के मतों को अनुस्यूत कर जैनधर्म की प्राचीनता प्रमाणित करने का प्रयास किया है। डॉ. ज्योति प्रसाद की पुस्तक "Jainism The Oldest Living Religion" की कड़ी में यह पुस्तिका आती है।

उपर्युक्त तीनों पुस्तकों की सुन्दर प्रस्तुति के लिये श्रीमती बोथरा बधाई की पात्र हैं !

- रमाकान्त जैन

(26) Apta-Mimamsa of Acharya Samantabhadra : ed. & trans. by Sarat Chandra Ghoshal; Pub. Bharatiya Jnanpith, 18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110003; 2002 A.D.;price Rs 150/-. pp. 180;

Apta-Mimamsa, also known as the Devagama Stotra, was written by Samantabhadra, a Digambra Acharya, in 114 verses, in Sanskrit, subdvided into 10 chapters, to explain the Apta. Apta is the omniscient and Apta-mimamsa is the establishment of the omniscient by refuting the view of those who deny omniscience. The concluding verse 114 says, "This Apta-Mimamsa (establishment of the Omniscient) is composed for those who seek liberation, for attainment of proper objects from correct and false teachings."

Sarat Chandra Ghoshal was a celebrated scholar of Indian philosophy and Jainology in the early half of the 20th century. He has given lucid translation of the text in English, and in the commentary, has explained the meaning and import of each verse which makes it easy to comprehend the subject. In the introduction he has given relevant information about Samantabhadra. In his view, Samantabhadra should be placed after Umasvami because the Apta has been explained with reference to the opening verse of the Tattvarthadhigama Sutra of Umasvami:

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्–गुणलब्धये।।

This work was completed by the Late S. C. Ghoshal in June 1944 for the Sacred Books of the Jainas series. It could be published after some 58 years by the conscientious effort of Mr. Kailash Bhushan Jindal who retrieved the script from the papers of his late father Pt. Ajit Prasad, the last editor of the S.B.J., and prevailed upon the Bharatiya Jnanpith to bring out this valuable work. Both Mr. Jindal and the publishers owe a line of gratitude from the Jainologists.

- Dr. Shashi Kant

अभिनन्दन

■ **श्रीमती कांति जैन (ग्वालियर)** को उनके शोध-प्रबन्ध **'स्व. पदमलाल पुन्नालाल बख्शी की साहित्यिक विचारधारा'** पर विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर (बिहार) ने पी-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

■ **श्रीमती वन्दना श्रीवास्तव** को उनके शोध-प्रबन्ध **"जैनेन्द्र का साहित्य चिन्तन और कथा लोचन"** पर लखनऊ विश्वविद्यालय ने पी.-एच.डी. उपाधि प्रदान की।

■ **पं. मल्लिनाथ जैन शास्त्री (चेन्नै)** को आगमिक ज्ञान के संरक्षण हेतु **आचार्य श्री शांतिसागर छाणी स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, डॉ. श्रेयांस कुमार जैन (बड़ौत)** को जिनवाणी-प्रभावना हेतु **आचार्य श्री सूर्यसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, श्री जयसेन जैन** (सम्पादक- सन्मति वाणी) को जैन पत्रकारिता-क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान हेतु **आचार्य श्री विमलसागर (भिण्ड) स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' (नागपुर)** को जैन विद्याओं के पारम्परिक अध्ययन/अनुसंधान के क्षेत्र में समग्र योगदान हेतु **आचार्य श्री सुमतिसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार, डॉ. (श्रीमती) नीलम जैन (गाजियाबाद)** को जैन धर्म/दर्शन के किसी भी क्षेत्र में लिखी हुई मौलिक, शोधपूर्ण, अप्रकाशित कृति पर **मुनि श्री वर्द्धमानसागर स्मृति श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार** तथा **श्री कमल कुमार जैन (साढम)** को **सराक पुरस्कार २००१** से सम्मानित किये जाने की घोषणा की गई।

■ तीर्थंकर ऋषभदेव जैन विद्वत महासंघ द्वारा **डॉ. दयाचन्द जैन, साहित्याचार्य (सागर)** एवं **श्री जयसेन जैन,** सम्पादक- सन्मति वाणी, को संयुक्त रूप से **स्व. चन्दारानी जैन (टिकैतनगर) की स्मृति में** तथा **पं. शिखरचंद जैन (सागर)** एवं **पं. शीतलचंद जैन (सागर)** को संयुक्त रूप से **श्रीमती रूपाबाई जैन (सनावद) की स्मृति में स्थापित वर्ष २००१ के पुरस्कार** दिये जाने की घोषणा की गई। साथ ही महासंघ के अध्यक्ष पं. शिवचरनलाल जैन (मैनपुरी) ने अपनी ओर से प्रचार मंत्री **डॉ. अभय प्रकाश जैन (ग्वालियर)** को ५००० रु. का विशेष पुरस्कार देने की घोषणा की।

■ २ दिसम्बर, २००१ को अहमदाबाद में प्राकृत एवं अपभ्रंश के विद्वान् **श्री रमणीक भाई एम. शाह (अहमदाबाद)** को ३१,००० रु. तथा जैन श्रमण परम्परा में गच्छों की उत्पत्ति एवं विकास पर शोधकर्ता **डॉ. शिव प्रसाद (वाराणसी)** को ११,००० रु. के पुरस्कार **सम्बोधि संस्थान** द्वारा प्रदान किये गये। साथ ही प्राचीन जिन प्रतिमाओं और साहित्य पर शोधकार्य हेतु विद्वान् **हम्पा नागराजैय्या (बेंगलौर)** को **बाबूलाल अमृतलाल शाह चेरीटेबिल ट्रस्ट** की ओर से **वाहुबलि सुवर्ण चन्द्रक** प्रदान किया गया।

■ **डॉ. लक्ष्मीमल सिंघवी** को जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं, का कुलाधिपति मनोनीत किया गया तथा २१ नवम्बर, २००१ को उन्हें प्रधानमंत्री निवास पर आयोजित भव्य समारोह में जैन महासभा, दिल्ली द्वारा स्थापित **'अहिंसा एवं सद्भावना सम्मान'** से सम्मानित किया गया।

■ २५ दिसम्बर को तुलसी स्मारक समिति, लखनऊ द्वारा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी जन्मशती पर आयोजित सारस्वत समारोह में अन्य के साथ **शोधादर्श** के सह-सम्पादक **श्री रमाकान्त जैन** को विविध विद्याओं में उनके साहित्यिक अवदान के लिये तथा **श्रीमती सुधा जिन्दल** को उनके नाट्य लेखन एवं रंगमंचीय अवदान के लिये सम्मानित किया गया।

■ ३ जनवरी, २००२ को लखनऊ में महामहिम राज्यपाल द्वारा संजय गांधी पी.जी.आई. के निदेशक **प्रो. महेन्द्र भण्डारी** को स्वास्थ्य की देखभाल के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियों के लिये **'दशक पुरुष'** (मैन ऑफ दि डिकेड) के खिताब से नवाजा गया।

■ इस वर्ष गणतन्त्र दिवस पर भारत सरकार द्वारा की गई घोषणानुसार २७ मार्च को राष्ट्रपति द्वारा अन्य के साथ चिकित्सा क्षेत्र में **डॉ. प्रकाश नानालाल कोठारी** को, कला के लिये **सुश्री दर्शना झावेरी** को तथा शिक्षा, प्रकाशन एवं सामाजिक सेवाओं के क्षेत्र में **श्री ज्ञानचंद जैन** अध्यक्ष, श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जैन श्वेताम्बर तीर्थ ट्रस्ट, हरिद्वार को **पद्मश्री** से अलंकृत किया गया।

■ पूर्व सांसद **श्री डालचन्द जैन, सागर,** को शिक्षा, कला, सामाजिक उत्थान एवं पीड़ित मानवता की सेवा में उत्कृष्ट योगदान हेतु एशिया मानव अधिकार शिक्षा संस्थान, भोपाल द्वारा "मानव गौरव" की उपाधि से सम्मानित किया गया।

■ **डॉ. फूलचन्द्र जैन 'प्रेमी',** वाराणसी अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

■ **श्री आशू जैन,** लखनऊ, २८ जनवरी को आयकर आयुक्त के पद पर पदोन्नत हुए।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

आभार

■ तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ०प्र० के उपमंत्री श्री नरेशचन्द्र जैन, ४४३ राजेन्द्र नगर लखनऊ ने समिति के शोध पुस्तकालय की गतिविधियों के संवर्द्धन के लिए रु. १,०००/- की विशेष सहायता प्रदान की।

■ हमारी समिति के ही उपाध्यक्ष **श्री कन्हैयालाल जैन** ने अपने पौत्र रुचिर (सुपुत्र श्रीमती कुसुम- श्री अशोक) तथा पौत्री रिचा (सुपुत्री श्रीमती मधु- श्री आनन्द) के शुभ विवाह उपलक्ष में **शोधादर्श** व समिति के **शोध पुस्तकालय** प्रत्येक को रु. १०१/- की सहायता प्रदान की।

■ श्री सुनील कुमार जैन (१०/११) छत्ता जम्बूदास, मस्जिद वाली गली, सहारनपुर -२४६००१) ने अपने सुपुत्र सौरभ के दि० २५-२-२००२ को सम्पन्न हुए विवाह के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु. १००/- भेंट किये।

■ श्री वीरेन्द्र कुमार जैन, अधिशासी अभियन्ता (१३६/२ जागृति विहार, मेरठ -२५०००१) ने अपने पौत्र चि. ईशु (सुपुत्र श्रीमती शालू - श्री विकास जैन) के जन्मोत्सव के उपलक्ष में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

■ **श्री सतीश कुमार जैन,** सेक्रेटरी जनरल, अहिंसा इण्टरनेशनल, वसंत कुंज, नई दिल्ली ने अपने दिवंगत पिताश्री श्रीचन्द जैन की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १५१/- भेंट किये।

■ **श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा,** १६ सी, शान्ति मार्ग, महानगर विस्तार, लखनऊ, जो पहले से **शोधादर्श** के आजीवन ग्राहक हैं, ने पत्रिका की पाठ्य सामग्री से प्रभावित होकर वर्ष २००१ व वर्ष २००२ के शुल्क स्वरूप रु. १००/- की राशि भेंट की।

■ **डॉ. शशिकान्त - रमाकान्त जैन,** चारबाग, लखनऊ ने अपने पिताश्री इतिहास-मनीषी स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६० वीं जन्म जयन्ती पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/- भेंट किये।

शोक संवेदन

■ १ नवम्बर, २००१ को चिंगुस शहर (काशमीर) में आतंकवादियों से लड़ते हुए इन्दौर निवासी २२ वर्षीय **लेफ्टिनेंट गौतम जैन** शहीद हो गये।

■ ४ नवम्बर को जयपुर में 'जैन महिलादर्श' की पूर्व प्रधान सम्पादिका विदुषी **डॉ. (श्रीमती) कुसुम शाह** का कैंसर रोग से निधन हो गया।

■ १५ नवम्बर को संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान **श्री मंडन मिश्र** नहीं रहे।

■ २६ नवम्बर को दिल्ली में नहटौर निवासी १०१ वर्षीय सुश्रावक **श्री श्रीचन्द जैन** का स्वर्गवास हो गया।

■ २६ नवम्बर को खिमलासा (म.प्र.) में **आर्यिका जिनमति जी** समाधिस्थ हुईं।

■ ३० नवम्बर को कोलकाता में ८५ वर्षीय कर्मठ समाजसेवी **श्री अमरचंद्र पहाड़िया** नहीं रहे।

■ ८ दिसम्बर को दिल्ली में मोटर व्यवसायी, समर्पित समाजसेवी धर्मात्मा **श्री रमेशचन्द जैन** का निधन हो गया।

■ १२ दिसम्बर को भोपाल में **आर्यिका एकत्वमति माताजी** की पार्थिव देह पंचतत्व में विलीन हुई।

■ ३ जनवरी, २००२ को हिसार में समर्पित समाजसेवी और दिगम्बर जैन परिषद के संरक्षक १०२ वर्षीय **बा. महावीर प्रसाद जैन, एडवोकेट** नहीं रहे।

■ ६ जनवरी को लखनऊ में विश्वविद्यालय के संस्कृत एवं प्राकृत विभाग के पूर्व अध्यक्ष **डॉ. शिव शेखर मिश्र** का निधन हो गया।

■ ६ जनवरी को जोधपुर में राजस्थान उच्चन्यायालय के पूर्व न्यायाधीश, वरिष्ठ समाजसेवी ७४ वर्षीय **न्यायमूर्ति श्री सौभाग्यमल जैन** का देहावसान हो गया।

■ उसी दिन कटनी में ६१ वर्षीय प्रतिष्ठाचार्य **पं. जमुनाप्रसाद शास्त्री** दिवंगत हो गये।

■ १० जनवरी को दिल्ली में अहिंसा स्थल महरौली के ट्रस्टी और वरिष्ठ समाजसेवी **श्री कैलाशचंद्र जैन** (जैना वॉच) का निधन हो गया।

■ २१ जनवरी को सनावद में **मुनि श्री चारित्रसागर** का समाधिमरण हो गया।

■ २२ जनवरी को सागर में श्रीमंत सेठ डालचन्द जैन की धर्मपरायणा पत्नी **श्रीमती सुधारानी जैन** दिवंगत हो गईं।

■ अम्बाला में ८० वर्षीय **आचार्य विजय इंद्रदिन्न सूरीश्वर** महाराज का निधन हो गया।

■ ११ फरवरी को कोलकाता में 'समाज रत्न', 'जिनशासन गौरव' और 'साहित्य वाचस्पति' उपाधियों से सम्मानित; जैन धर्म, दर्शन, साहित्य एवं इतिहास के मर्मज्ञ लब्धप्रतिष्ठ विद्वान श्रेष्ठि श्रावक (६० वर्षीय) **श्री भँवर लाल नाहटा** का निधन हो गया।

■ १६ फरवरी को केशव ग्राम (जिला जालौर) में अध्यात्म योगी ७८ वर्षीय जैनाचार्य श्रीमद् विजय कल्याणसूरि जी समाधिपूर्वक कालधर्म को प्राप्त हुए।

■ ३ मार्च को लखनऊ में ६० वर्षीया **श्रीमती वेदवती गोयल** नहीं रहीं।

उपर्युक्त सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शान्ति और सद्गति के लिये जिनेन्द्र देव से प्रार्थना करता है और उनके स्वजनों - परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

शोधादर्श : पाठकों की दृष्टि में

■ आपके संपादन में **शोधादर्श** उत्तरोत्तर स्तरीय-पठनीय सामग्री परोस रहा है, साधुवाद! आपके संपादकीय और चिन्तन कण अत्यन्त समयोचित एवं मर्मस्पर्शी होते हैं और सत्य को सरेआम बेनकाब करके गिलाफ उतारते से लगते हैं। समाज का ऊपरी गिलाफ तो लकदक शुभ्र सफेद है लेकिन गिलाफ उतरते ही असली चेहरे बदनुमा दागों के साथ उपस्थित हो जाते हैं, यही हमारी बदनसीबी है।

अंक ४५ के पृष्ठ १५ पर अन्तिम पैराग्राफ की अन्तिम पंक्तियां पच नहीं रही हैं-पचने योग्य भी नहीं है-हिंसा वृद्धि में डॉ. बगड़ा को दोष नहीं आयेगा-दोष उनको आयेगा जो महावीर की अहिंसा के नाम पर और २६०० वे जन्म जयन्ती समारोह के नाम पर अपनी-अपनी रोटियां सेंक रहे हैं। क्या समूची अहिंसक समाज को दोष नहीं आयेगा जो बूचड़खानी संस्कृति को एकजुट होकर रोक नहीं पा रही है? अहिंसक समाज की देश में प्रमुखता है लेकिन उसके नाकारापन ने देश को विश्व का मुख्य मांस निर्यातक बनाया है।

'समाधान मांगते प्रश्न' के अन्तर्गत श्री जमनालाल जैन के प्रश्नों का जस्टिस एम.एल.जैन द्वारा कियागया समाधान बहुत सटीक है। 'सामयिक परिदृश्य' में श्री रमाकान्त की क्षणिकाएं तीन स्थलों को सूक्ष्मता से पकड़कर बेनकाब करने में सफल हुई है। श्री अजित प्रसाद जी के पृष्ठ ६०-६१ पर चिन्तन कण से मेरी सहमति है। वह सत्यता के निकट है। पृष्ठ ४०-४२ पर निर्वाण महोत्सव सम्बन्धी आलेख शोध खोजपूर्ण है तथा नवीन जानकारियां देता है। डॉ. शशिकान्त ने 'महामानव महावीर' में सामाजिक परिदृश्य पर अच्छे समाधान प्रस्तुत किये हैं। १६२ वर्ष प्राचीन म. महावीर का सिक्का किस टकसाल का है। यदि उसका आगे-पीछे का फोटो भी दिया जाता तो उसे डिसाइफर कराने में सुविधा होती। शोधादर्श नवीन तथ्यों की जानकारी देता है तथा मौलिकता पोषी है और उत्तरोत्तर उत्तमता की ओर बढ़ रहा है।

- डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर

■ **शोधादर्श**-४४ भिलाई से वापस आने पर पढ़ा। तीर्थंकर महावीर के २६०० वें जयन्ती वर्ष के अवसरानुकूल इस अंक की सभी रचनाएं शोधपूर्ण और साक्ष्य सापेक्ष हैं। सम्पादकीय के अन्तर्गत 'जयति श्रुत देवता' और चिन्तन कण के अन्तर्गत 'अपनी परम्पराआं को न भूलें' चिन्तनीय और अनुपालनीय हैं। डॉ. शशिकान्त ने अपने आलेख में न केवल राजगृह का परिभ्रमण करा दिया अपितु वहाँ की पुरातत्व सम्पदा से भी साक्षात सा करा दिया। वहाँ की कतिपय तीर्थंकर प्रतिमाओं की पीठिका अथवा शीर्ष पर लेटी हुई नारी-आकृति की पहचान जानने की जिज्ञासा है। **शोधादर्श** वस्तुतः आदर्श शोध की पत्रिका है।

नई सजधज और नये कलेवर में **शोधादर्श** अपनी लीक पर अडिग रूप से प्रगतिशील है, अंक ४५ इस तथ्य की पुष्टि करता है। सम्पादकीय 'यह कैसा अहिंसा वर्ष?' सरकार की घोषणा और नीति निर्धारण के विरोधाभास को निर्भीकता से उजागर करता है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के लेख में बुद्धघोष द्वारा वर्णित महावीरकालीन इतिहास के कुछ रोचक तथ्य उजागर किये गये हैं। किन्तु इसमें अजातशत्रु की माता वैदेही को कोशलनरेश की कन्या बताया गया है जबकि उसकी माता चेल्हणा लिच्छवि-प्रधान चेटक की कन्या थी। वैसे भी वैदेही विदेह की राजकुमारी थी न कि कोशल की। डॉ. गुलाब चन्द्र जैन ने अपने आलेख में कतिपय विशिष्ट जैन प्रतिमाओं की जानकारी दी है। सर्वाधिक रोचक लगा पृष्ठ ३३ पर श्री भगवान महावीर के १६२ वर्ष पुराने सिक्के का विवरण। यदि इसी के साथ सिक्के का चित्र भी छापा गया होता तो पाठकों का बड़ा लाभ होता। 'चिन्तन कण' के अन्तर्गत श्री अजित प्रसाद जैन का 'सही निर्वाण-स्थली पावा' से सम्बन्धित चिन्तन तथा सरकार से अपेक्षा सामयिक है। कुल मिलाकर **शोधादर्श** का यह अंक भी संग्रहणीय अंक बना है। इसके लिए समस्त सम्पादक मण्डल को हार्दिक बधाई!

- डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ

■ **शोधादर्श** में प्रस्तावना, लेख एवं समाज में उपजी विकृतियों का चित्रण प्रायः सजीव होता है, जिसे झुठलाना संभव नहीं। **शोधादर्श** समाज में बढ़ती कुरीतियों के विरुद्ध अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। **- एम.के.जैन, नई दिल्ली**

■ **शोधादर्श** नियमित देख रहा हूँ, सामग्री चयन के साथ-साथ श्री अजित प्रसाद जी की बेबाक टिप्पणियां, सटीक समीक्षा, साहसपूर्ण समालोचनायें स्वतः हमारा अन्तः धन्यवाद प्राप्त कर लेती हैं। **- डॉ. महेन्द्रकुमार जैन 'मनुज', इन्दौर**

■ **शोधादर्श**-४५ में सम्पादकीय आलेख को गंभीरता से पढ़ा। 'यह कैसा अहिंसा बर्ष ?' सामायिक आलेख है। आपने मेरे संदर्भ में शुभकामना या संवेदना का प्रश्न उठाकर अच्छा किया है, और भी ऐसे ही पत्र दो-तीन मेरे पास भी आये हैं। अतः अपना दृष्टिकोण भेज रहा हूँ तथा जनवरी के **'दिशाबोध'** में भी प्रकाशित कर रहा हूँ।

वैसे यह पत्रिका भगवान महावीर पर विशिष्ट शोधपूर्ण आलेखों के कारण संग्रहणीय बन गई है। **- डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा, कोलकाता**

■ बहुत वर्ष पूर्व मैं शोधादर्श का आजीवन सदस्य बना था। तब से **शोधादर्श** के प्रत्येक अंक में मुझे सदैव उच्च कोटि की पाठ्य सामग्री मिली है। मेरी इच्छा है कि वर्ष २००१ से **शोधादर्श** का वार्षिक शुल्क भी दिया करुं। अतएव वर्ष २००१ तथा वर्ष २००२ का शुल्क एक सौ रुपए प्रस्तुत कर रहा हूँ। **- ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा, लखनऊ**

■ शोधादर्श में आपकी क्षणिकायें अच्छी लगीं। भ. महावीर की २६०० वाँ जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में भगवान महावीर के विषय में काफी सामग्री आप अपने अंकों में छाप रहे हैं। 'सम्पादकीय' में अहिंसा और बूचड़खानों के बारे में काफी प्रकाश डाला गया है। जहाँ एक ओर

रात्रि भोजन और जमीन के अन्दर पैदा हुई चीजों को खाने का त्याग करने वाला वर्ग है, वहीं अगर मिल जाये तो आदमी भी खा जायें ऐसा भी वर्ग है। विरोधाभास हर जगह है।

मेरा मानना है बूचड़खाने भी आवश्यक हैं, क्योंकि जो जानवर किसी भी योग्य नहीं रह जाते उनको पालना भी समस्या है। जहाँ आदमी को ही पेट भर खाना नसीब नहीं, वहाँ बेकार पशुओं को पालना तो किसी गौशाला के वश की ही बात है। पढ़ने में आता है कि गौशालाओं में भी, जो सरकारी अनुदान या किसी संस्था द्वारा चलाई हैं, पशुओं को सिर्फ जिन्दा रखने भर का ही भोजन दिया जाता है। **- इंजी. शिरीष कान्त, मवाना**

■ **शोधादर्श**-४५ एक ही बैठक में पूरा पढ़कर ही अन्यत्र किसी को दे सका। सदैव की भांति यह अंक खट्टी-मीठी, कषैली सामग्री के साथ आकर्षक, सुन्दर, पठनीय, मननीय, प्रेरणास्पद, प्रशंसनीय और संग्रहणीय है। श्री जमनालाल के प्रश्नों के समाधान भी पसन्द आये। श्री लालचन्द्र, टिकैतनगर, का प्रश्न निश्चित ही विचारणीय है। वास्तु शास्त्र के नाम पर कई मंदिरों का मनमानी तरह से नवीनीकरण हो रहा है, जो समाधान खोजता ज्वलंत प्रश्न है। श्री लालचन्द्र को मेरा यही सुझाव है कि मंदिर तुड़वाने वालों से वह पूछें कि वे किन-किन प्राचीन तीर्थक्षेत्रों को तुड़वायेंगे जो सैकड़ों वर्षो से वास्तु शास्त्र सम्मत नहीं हैं, फिर भी वे उत्कर्ष पर हैं। अहिंसा वर्ष के सम्बन्ध में आपका सम्पादकीय विचारणीय है और 'समाचार विमर्श' सदैव की तरह चौकाने वाले तथ्यों को उजागर करने वाला। महासभा के प्रस्ताव-निर्णय प्रशंसनीय हैं, पर फाइलों तक सीमित रहना ठीक न होगा। **- सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवां**

■ पत्रिका मिली। मैं लिख नहीं सकता इतनी उपयोगी सूचनाएं मिली हैं। संभवतः हर एक को इतनी सारी जानकारियां न हों। पृष्ठ ३३ पर **East India Cmpany** के **Half Anna** के भगवान महावीर के सिक्के का विवरण है। मेरा सुझाव है कि भगवान महावीर के इस सिक्के को **replica** बनवाकर विश्व को उपलब्ध कराया जाय।

- साहू शैलेन्द्र कुमार जैन, एडवोकेट, खुर्जा

■ **शोधादर्श** में सामाजिक प्रबोधन के साथ शोध प्रबन्ध भी अच्छे रहते हैं। इससे प्रभावित होकर सदस्य बन रही हूँ। **- सौ. व्होरा विद्युल्लता हीरालाल, पुणे**

■ **शोधादर्श**-४५ में अनेकान्त और स्याद्वाद के सर्वोदयी म. महावीर पर शोधपरक सामग्री पढ़ने को मिली। सम्पादकीय 'यह कैसा अहिंसा वर्ष?' में जो तथ्य उठाये हैं, निश्चित रूप से विचारणीय हैं। 'महामानव महावीर' आलेख हेतु डॉ. शशिकान्त को बधाई! श्री गादिया का 'मध्यकालीन हिन्दी साहित्य पर जैन दर्शन का प्रभाव' शोधार्थियों को दिशा देगा। पूरी पत्रिका संग्रहणीय है। शुभकामना है यह हमेशा आदर्श शोधलेख के रूप में फले-फूले !

- डॉ. बारेलाल जैन, रीवां

■ **शोधादर्श** नवम्बर २००१ अंक सुन्दर, ज्ञानवर्द्धक पठनीय सामग्री से पूर्ण है। 'गुरुगुण कीर्तन' के अन्तर्गत विभिन्न कवियों के विचार समादर योग्य हैं व भ. महावीर के बताये गये पथ पर चलने को प्रेरित करते हैं। सम्पादकीय मननीय है। अहिंसा का पथ वास्तव में अमल करने योग्य है, महावीर सम्बन्धी सभी जानकारी विचारणीय है। जैन मूर्तिकला और दर्शनशास्त्र गंभीरता से चिन्तनीय है। 'साहित्य सत्कार' के अन्तर्गत जो समीक्षाएं पुस्तकों की दी गई हैं वे संक्षिप्त होकर भी सारगर्भित हैं। 'समाचार विमर्श' और 'समाचार विविधा' भी ध्यानाकर्षक हैं। 'अभिनंदन' व 'शोक संवदेन' हृदय को द्रवित करते हैं। 'समिति का प्रगति प्रतिवेदन' वस्तुस्थिति समझने में सहायक है। **- मदन मोहन वर्मा, ग्वालियर**

■ **शोधादर्श** एक उच्च कोटि की चातुर्मासिक पत्रिका है, जो पाठकों को अच्छी पठनीय सामग्री प्रदान करती है। अंक ४५ में अनेक प्राचीन एवं नवीन ग्रन्थों से निर्वाण भक्ति, 'आत्मजयी भगवान महावीर', 'वन्दनाः हिंसा की अहिंसा को', 'आधुनिक विश्व में अहिंसा की प्रासंगिकता', 'समाधान मांगते प्रश्न', 'सही निर्वाण स्थली पावा कहाँ? तथा सम्पादकीय 'यह कैसा अहिंसा वर्ष'? इत्यादि लेख विशेष रूप से पठनीय और चिन्तनीय हैं। मुझे यह पत्रिका बहुत अच्छी लगी। **- डॉ. उदयचन्द्र जैन, वाराणसी**

■ चिर-साहित्य सखा **शोधादर्श** में प्रकाशित साहित्य बहुत ही मार्मिक व आनन्दप्रद होते हुए ज्ञानवर्द्धक तो है ही, पूर्व ज्ञान एवं स्मृति को तरोताजा करते हुए हर्षवर्द्धक रहता है। 'समय शाह' के लेखक श्री एम.एल. जैन ने संत तारण-तरण का आनन्दप्रद साहित्य उजागार किया है। **- पन्नालाल जैन, रीवां**

■ नवम्बर २००१ का **'शोधादर्श'** पढ़कर ज्ञान खूब हुआ। लेकिन देश में हो रही पशु-पक्षियों की नृशंस हत्या के समाचार ने मन को हिला दिया है। 'अहिंसा वर्ष' कागजों में ही चल रहा है। वस्तुतः यह 'हिंसा वर्ष' ही माना जाना चाहिए।

- आनन्द प्रकाश जैन, हस्तिनापुर

■ **शोधादर्श**-४५ उचित, ठीक, बढिया निकला है। आत्मानुभव के प्रेरणादायक लेख, कथाएं भी उसमें होनी चाहिएं। **शोधादर्श** जैसी उत्तम पत्रिकाएं व्यक्ति-समाज के परिवर्तन में निमित्त की भूमिका निभा सकती है। **- सुखमाल चन्द, ग्रीन पार्क, नई दिल्ली**

■ **शोधादर्श**-४५ में एक नई विधा शुरु की गई है कि पाठक के मन में अगर कोई शंका आई हो तो उसका निराकरण आप श्री कराएंगे। यह अति उत्तम है।

- एस.के.शहा, गणेश दुर्ग, सांगली

■ **शोधादर्श**-४५ अंक आद्योपान्त पढ़ा। सभी सामग्री सदा की भांति सुन्दर व पठनीय है। खूब संकलन किया है। आपने सम्पादकीय में ठीक ही लिखा है कि अहिंसा वर्ष मात्र नाम ही दिया गया है। कत्लखाने पर कत्लखाने खोले जा रहे हैं-अहिंसक देश भी हिंसक हो गया है।

प्रतिमा तो तीर्थंकर प्रभु की ही पूजनीय होती है पर आजकल आचार्य, मुनि भी अपनी व अपने गुरुओं की प्रतिमा मानकषाय के वशीभूत बनवाकर पुजवाने लगे हैं। मान से हाथी की पर्याय मिलनी है। पठनीय, मननीय, अनुकरणीय लेखों के लिए ढेर सारी शुभकामनाएं !

- महावीर प्रसाद जैन सर्राफ;
दरियागंज, नई दिल्ली

■ **शोधादर्श**-४५ भगवान महावीर के जीवन, उनके उपदेशों इत्यादि के सम्बन्ध में बहुत उच्चकोटि की सामग्री प्रस्तुत करता है। सभी लेख विद्वत्तापूर्ण हैं। आशा है, यह अंक जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में एक मील के पत्थर के समान होगा।

श्री अजित प्रसाद जैन का सम्पादकीय 'यह कैसा अहिंसा वर्ष?' देश में हो रहे पशुधन के सर्वनाश की ओर इंगित ही नहीं करता वरन् एक भयावह चित्र प्रस्तुत करता है। 'हलाल' के नाम पर तथा अच्छी क्वालिटी का चमड़ा प्राप्त करने हेतु पशुओं पर क्या-क्या अत्याचार हो रहा है उसकी विशद झांकी इस लेख में है। इस सम्बन्ध में डॉ. परमानन्द जड़िया की काव्य-प्रस्तुति भी सराहनीय है।

डॉ. शशि कान्त जैन से निवेदन है कि वह इतनी अच्छी इस पत्रिका से अपना सम्बन्ध बनाये रक्खें। इस पत्रिका को उनके जैसे विद्वान की आवश्यकता है।

- गया प्रसाद तिवारी 'मानस', लखनऊ

■ दिसम्बर मास की भीषण ठण्ड में ज्ञान की ऊर्जा से सम्पन्न **शोधादर्श** का ४५वां अंक प्राप्त हुआ। 'गुरुगुण-कीर्तन' में भाई रमाकान्त जैन ने वर्द्धमान महावीर के सम्बन्ध में प्राचीन तथा अर्वाचीन भक्तों द्वारा लिखी गयी वन्दनाओं का यत्नपूर्वक चयन कर एक माला तैयार की है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख 'बुद्धघोष वर्णित महावीरकालीन इतिहास' ज्ञानवर्धक है। सम्पादकीय मर्मान्तक पीड़ा से भरा है। डॉ. शशिकान्त का लेख 'महामानव महावीर' ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। डॉ. नेमिचन्द जैन द्वारा वर्णित सिंह और चमरी गाय वाला प्रसंग मात्र चमत्कार नहीं, योग शक्ति का प्रमाण है। पातंजलि योगदर्शन में भी कहा गया है कि योगी के समक्ष हिंसक जन्तु भी अहिंसक बन जाते हैं। भगवान महावीर तो योगियों के शिरोमणि थे। कुल मिलाकर **शोधादर्श**-४५ पठनीय, मननीय तथा संग्रहणीय है।

- डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ

■ **शोधादर्श**-४५ में आपने मेरे प्रश्न तथा जस्टिस एम.एल.जैन के उत्तर दिये। अच्छा लगा। शास्त्रों का बचाव करते हुए सावधानीपूर्वक उन्होंने उत्तर दिये हैं।

- जमनालाल जैन, सारनाथ (वाराणसी)

■ **शोधादर्श** के चिन्तनकण, समाचार विमर्श, सम्पादकीय एवं अन्य सामग्री प्रेरक एवं बिना लाग-लपेट की होती है। इसी कारण **शोधादर्श** खूब लोकप्रिय हुआ है।

- डॉ. ऋषभचन्द्र जैन, वैशाली

■ प्राप्त कर सुन्दर **'शोधादर्श'**। शोध परिपूरित लेख अनेक। दे रहे दोहे भी आनन्द।
बढ़ा उर-अन्तर में है हर्ष।। समाहित जिनमे ज्ञान विवेक।। रचयिता जिनके 'परमानन्द'।
अंक है पैंतालिस रुचि पूर्ण। शीर्षक 'साहित्य सत्कार'। अंक लगता साहित्यागार।
कर रहा जो कुरीतियां चूर्ण।। ग्रन्थ परिचय है विविध प्रकार।। बधाई सम्पादक शतवार।।
भरा है विपुल ज्ञान-भण्डार। कहीं पर छाया काव्य तरंग। **- दयानन्द जड़िया 'अबोध'**
पठन सामग्री अपरम्पार।। 'जैन' की क्षणिकाओं के संग।। **लखनऊ**

■ छः माह के बाद विदेश से लौटने पर **शोधादर्श** अंक ४४ और ४५ देखने को मिले। आपकी लेखनी की प्रशंसा में अन्य पाठकों के समान मैं भी बहुत कुछ लिख सकता था, पर मैं समझता हूँ यह आवश्यक नहीं है। पर मैं इतना अवश्य कहना चाहूँगा कि **शोधादर्श** की प्रशंसा करते जो लोग नहीं अघाते उनमें कुछ स्वयं या तो विविध पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक/सम्पादिका हैं या मनीषी विद्वान पर उनमें इतना साहस क्यों नही है कि वे भी अपनी पत्रिकाओं में इसी प्रकार की निर्भीक टिप्पणियां लिखें या इसी प्रकार के विचारोत्तेजक लेख लिखें। इस प्रकार की केवल एक पत्रिका **'दिशा बोध'** ही मेरे देखने में आई है, पर अन्य पत्रिकाओं ने क्यों मौन साध रखा है ? एक निवेदन 'साहित्य सत्कार' के अन्तर्गत जिन प्रकाशनों की समीक्षा की जाती है, उनके प्रकाशक का केवल नाम ही नहीं पूरा पता भी दें। इससे पाठकों को वे प्रकाशन प्राप्त करने में सुविधा होगी।

- महेन्द्र राजा जैन, एलन गंज, इलाहाबाद

■ **शोधादर्श** के माध्यम से आप जैन समाज में व्याप्त कुरीतियों, विसंगतियों को दूर करने का प्रयास करते रहते हैं, इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं !

आपसे निवेदन है कि अपनी पत्रिका के माध्यम से साधु समाज से अनुरोध करें कि वे समाज के धनाढ्य वर्ग पर अपने प्रभाव का इस्तेमाल उनसे नित नए मन्दिर, मूर्ति निर्माण कराने के बजाय उन्हें चिकित्सालय, विद्यालय की स्थापना के लिए प्रेरित करें, उद्योगपतियों व बड़े व्यापारियों को प्रेरित करें कि वे अपने प्रतिष्ठानों, कारखानों में जैन नवयुवकों को रोजगार दें तथा उन्हें नए उद्योग स्थापित करने में सहायता दें।

- पवन कुमार जैन, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

■ शोधादर्श का प्रत्येक अंक नियम से प्राप्त होते ही पढ़ता हूँ। अंक ४५ की भी विषय सामग्री पूर्व अंकों की तरह ज्ञानवर्द्धक है। सम्पादकीय लेख ''यह कैसा अहिंसा वर्ष? में कथनी और वास्तविकता का सजीव चित्रण हुआ है। रमाकान्त जी का ''गुरुगुण कीर्तन'' व अन्य मनीषी विद्वानों के आलेख खोजपूर्ण व ओजपूर्ण हैं। समाज की पत्रिकाओं में यह पत्रिका अपना विशेष स्थान बनाए है।

हुकम चन्द्र जैन, मेरठ

आवश्यक सूचना

वर्ष २००१ का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक अथवा ड्राफ्ट न भेजें। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।

शोधादर्श चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

शोधादर्श में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

शोधादर्श में समीक्षार्थ पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

शोधादर्श में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

- प्रधान सम्पादक

❑❑❑